*Journal of Socio-Educational & Cultural Research*
*International Journal of Arts & Social Sciences*
*Peer Reviewed Refereed Journal*
*Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India*
*Vol.12, N. 27, December 2026*
DOI: https://doi.org/10.68868/14Js15aK39
**www.jsecrjournal.in**

# फणीश्वरनाथ रेणु का रचना-संसार : आंचलिकता, सामाजिक यथार्थ और मानवीय

**डॉ अरमान अंसारी**
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
एम.एच.एम.कॉलेज, सोनबरसा सहरसा
पिन कोड 852129
ईमेल-sjparman@gmail.com

**सारांश**

फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी साहित्य के ऐसे महत्त्वपूर्ण कथाकार हैं, जिनके साहित्य में भारतीय ग्रामीण जीवन, सामाजिक यथार्थ और राजनीतिक चेतना का व्यापक चित्रण मिलता है। उनका व्यक्तित्व केवल एक साहित्यकार का व्यक्तित्व नहीं है, बल्कि वह स्वतंत्रता आंदोलन, समाजवादी विचारधारा और जनसामान्य के संघर्षों से निर्मित एक सक्रिय राजनीतिक चेतना का भी प्रतिनिधित्व करता है। रेणु के जीवन पर पारिवारिक संस्कारों, स्थानीय सामाजिक परिवेश तथा स्वतंत्रता आंदोलन का गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने समय की राजनीतिक घटनाओं, सामाजिक विषमताओं और ग्रामीण समाज की समस्याओं को निकट से देखा तथा उन्हें अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया। उनके कथा साहित्य में स्वतंत्रता की आकांक्षा, लोकतांत्रिक मूल्यों, सामाजिक न्याय और शोषण के विरोध की भावना प्रमुखता से दिखाई देती है। 'मैला आँचल' जैसी रचनाओं में ग्रामीण समाज की जटिलताओं के साथ राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रियाएँ भी अभिव्यक्त हुई हैं। प्रस्तुत आलेख में रेणु की वैचारिक पृष्ठभूमि, राजनीतिक सक्रियता और साहित्यिक अभिव्यक्ति के अंतर्संबंधों का विश्लेषण किया गया है।

**बीज शब्द-** फणीश्वरनाथ रेणु, वैचारिक चेतना, राजनीतिक विचारधारा, स्वतंत्रता आंदोलन, समाजवाद, जयप्रकाश नारायण, लोकतांत्रिक चेतना, ग्रामीण जीवन, जनपक्षधरता, आंचलिक साहित्य

Writing

फणीश्वरनाथ रेणु की विचारधारा उनके जीवनानुभवों, पारिवारिक संस्कारों, स्वतंत्रता आंदोलन में सहभागिता और समाजवादी राजनीतिक चेतना से निर्मित हुई। उनका साहित्य भारतीय समाज के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का सजीव दस्तावेज है। रेणु ने अपने समय की राष्ट्रीय गतिविधियों तथा जनआंदोलनों से जुड़कर राजनीति को केवल सत्ता प्राप्ति का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में समझा। उनके वैचारिक विकास में स्वतंत्रता आंदोलन, नेपाल के लोकतांत्रिक संघर्ष और समाजवादी

विचारधारा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। जयप्रकाश नारायण से जुड़ी राजनीतिक चेतना तथा जनसाधारण के प्रति उनकी प्रतिबद्धता ने उनके साहित्य को विशिष्ट दृष्टि प्रदान की। 'मैला आँचल' सहित उनकी अन्य रचनाओं में ग्रामीण जीवन, जातिगत विषमता, आर्थिक शोषण, राजनीतिक अवसरवाद और सामाजिक रूढ़ियों का यथार्थपरक चित्रण मिलता है। रेणु का दृष्टिकोण किसी एक राजनीतिक सिद्धांत तक सीमित नहीं था; उसमें मानवीय संवेदना, लोकतांत्रिक आकांक्षा और जनपक्षधरता का समन्वय दिखाई देता है। वे ग्रामीण समाज की समस्याओं को व्यापक राष्ट्रीय परिस्थितियों से जोड़कर देखते हैं। उनकी रचनाएँ स्पष्ट करती हैं कि साहित्य सामाजिक वास्तविकताओं से अलग नहीं रह सकता। प्रस्तुत आलेख रेणु की राजनीतिक सक्रियता, समाजवादी दृष्टिकोण और कथा साहित्य में अभिव्यक्त वैचारिक चेतना का विश्लेषण करते हुए उनके साहित्यिक महत्त्व को रेखांकित करता है।

'मैला आंचल' आजादी के दौर का मुकम्मल दास्तावेज सन् 1954 में प्रकाशित 'मैला आंचल' निर्विवाद रूप से हिन्दी का पहला प्रौढ़ आंचलिक उपन्यास है। इसके प्रकाशन के पूर्व रेणु अज्ञात थे किन्तु इस कृति के प्रकाशन के कुछ महीनों के भीतर ही रेणु को माटी का उपन्यासकार बना दिया। इस उपन्यास का परिचय देते हुए रेणु ने लिखा है- ''यह है मैला आँचल, एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिम। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है, इसके एक ओर है नेपाल, दूसरी और पाकिस्तान और पश्चिमी बंगाल। विभिन्न सीमा रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है, जब हम दक्खिन में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा-रेखाएं खींच देते हैं। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर-इस उपन्यास का कथा क्षेत्र बनाया है। इसमें फूल भी है, शूल भी हैं, धूल भी हैं, गुलाल भी, कीचड़ भी है, चन्दन भी, सुन्दरता भी है, कुरूपता भी- मैं किसी से भी दामन बचाकर निकल नहीं पाया।''[1] उपन्यास का कथानक दो खंडों में विभक्त है- पहला खंड आजादी से पहले की कथा से संबद्ध है, तो दूसरा खंड आजादी के स्वागत की तैयारी और आजादी के बाद के कथानक से संबंद्ध है। उपन्यास के आरंभ से ही पता चल जाता है कि सारे मेरीगंज में दस आदमी पढ़े-लिखे हैं। पढ़ाई भी दस्तख्त से तहसीलदारी कर लेने तक ही है। एक पढ़ने वालों की संख्या पंद्रह है। शिक्षा से जगने वाली चेतना का आभास उपन्यास में जगह-जगह मिलता है। पहले खण्ड में सन् 42 से लेकर स्वराज्य प्राप्ति तक का वर्णन है। राष्ट्रीय आंदोलन की व्याख्या, धार्मिक मठों के आडंबरों की कथा, ग्रामीण जनता के मनोभावों-उद्गारों आदि के विस्तृत वर्णन के साथ ही उत्सव, रीति-रिवाज, धार्मिक आडंबर, अंधविश्वास, राजनैतिक उलट-फेर, समाजवादी आंदोलन, गाने-बजाने आदिका विशद् वर्णन हुआ है। दूसरे खंड में स्वराज्य प्राप्ति के उत्सव का नृत्य, वादन, भाषण, कमला और डाॅ. प्रशांत की प्रेम-कथा, पूंजीपतियों के प्रति पुलिस का पक्षपात, कालीचरण का कारावास, बावनदास की मृत्यु आदि प्रसंग सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करने वाले हैं। इस तरह इस उपन्यास में गाँव के लोगों के आचार-विचार उनकी जीवन-पद्धति तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गाँवों में होने वाली गतिविधियों का चित्रण है। स्पष्ट है रेणु ने 'स्वातंन्त्योत्तर नई लोकतांत्रिक चेतना के आलोक में इन गाँवों को देखा-परखा है। 'आलोचना' पत्रिका (1966) में उद्धृत यह विचार भी 'मैला आंचल' को 'सटीक' रूप में परिभाषित करता है- ''....सन् 1942 से 1948 तक मेरीगंज गाँव में होने वाली राजनीतिक हलचलों, देशव्यापी आंदोलन की लहर, उसके प्रभाव, वहां के संगठन, बोलचाल, वहां के सामाजिक, आर्थिक आंदोलनों को ग्रहण करने की प्रक्रियाओं के संकलित शब्द चित्रों का नाम है मैला आँचल।''[2] इसमें गाँवों में जातीय आधार पर विभक्त विश्वनाथ प्रसाद, खेलावन यादव, रामकिरपाल सिंह आदि की कथाएं हैं, जिनमें परस्पर जातीय प्रतिद्धंद्धिता है। महंत सेवादास, रामदास, नरसिंहदास, नागा बाबा आदि मठाधीश साधुओं की कथा है, जो मठों में व्याप्त व्यभिचार, भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करती है। राजनैतिक चेतना और जागरण से प्रेरित-प्रभावित बालदेव, बावनदास, कालीचरण, बासुदेव, सुंदर जैसे लोगों की कथा है, तो ग्राम सेवा में पूर्ण रूप से समर्पित युवक के रूप में डाॅ. प्रशांत, मंगलादेवी की व्यथा भी है। इसके अतिरिक्त दलित-शोषित संथालों की कथा भी इसमें हैं। ये सारी कथाएं अंचल के बहाने भारतीय गांवों के समग्र रूप को उपस्थित करने में सहायक हुई हैं। मेरीगंज के माध्यम से रेणु ने भारत के सम्पूर्ण पिछड़े गांवों को चित्रित किया है। मेरीगंज

की तरह प्रत्येक गांव में लगभग वहीं गरीबी, अशिक्षा और अंधविश्वास का साम्राज्य है। भूमि पर कुछ गिने-चुने शक्तिशाली (विश्वनाथ जैसे) लोगों का अधिकार है। इसके अतिरिक्त स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् गाँवों में होने वाली प्रगति का भी उल्लेख इसमें हुआ है। चरखा-सेंटरों की स्थापना होती है, अस्पताल खुलते हैं, दलित वर्ग शोषकों के विरूद्ध संगठित होकर संघर्ष करते हैं। इसमें ग्रामीण वातावरण, ग्रामीण मुहावरे, ग्रामीण शब्दावली सब मिलाकर ऐसा दृश्य उपस्थित करते हैं कि पाठक बरबस कथास्थ्ल की सजीव कल्पना पर लेता है। ''रेणु के ग्राम-वर्णन में एक सांकेतिक अथवा प्रतीकात्मक अर्थ भी ध्वनित होता प्रतीत होता है। वह अर्थ है- भारत के ग्रामों का विकासशील जीवन, स्थानीय सीमाओं के भीतर राष्ट्रीय प्रगति का निदर्शन।''[3] कुल मिलाकर, यह 'मैला आंचल' नेपाल से शुरू होकर गंगा किनारे तक का वीरान धूमिल अंचल है, जिसके एक गाँव का यथातथ्य चित्रण रेणु के इस उपन्यास में हआ है। यह उपन्यास असुंदरता में सौन्दर्य, व्यंग्य में वेदना, कटुता से करूणा और गरीबी में गान का एक अभूतवपूर्व चित्र प्रस्तुत करता है। रेणु को मिट्टी से, धरती से, गांव से बेहद मोह है, यही कारण है कि मिट्टी के महत्व को, धरती और गाँव के महत्व को जानने और इससे जुड़ने की प्रेरणा रेणु हमें देते हैं। तभी डा॰. प्रशांत के स्वर में रेणु इस उपन्यास के अंत में कहते हैं- ''मैं फिर काम करूगां - यही इसी गांव में। आंसू से भीगी हुई धरती पर प्यार के पौधे लहलहायेंगे। मैं साधना करूंगा, ग्रामवासिनी भारत माता के मैले आंचल तले। कम-से-कम एक गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाए होठों पर मुस्कुराहट लौटा सकूं, उनके हृदय में आशा और विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ....।''[4] परती-परिकथा: धरती के जागरण की एक स्वप्नकथा 'परती-परिकथा' फणीश्वरनाथ रेणु का दूसरा महत्वपूर्ण उपन्यास है। हिन्दी की औपन्यासिक धारा का एक नया मोड़ 'परती परिकथा' अपने शीर्षक से ही अपनी कथावस्तु का संकेत कर देता है। लेखक ने उपन्यास का आरंभ करते हुए कहा, ''धूसर, वीरान अंतहीन प्रान्तर। पतिता भूमि, परती जमीन, वन्धया धरती....।''[5] इस परती भूमि का केन्द्र उसने परानपुर गाँव को बनाया है- ''पुरातन ग्राम परानपुर। इस इलाके के लोग परानपुर को सारे अंचल का प्राण कहते हैं।''[6] यही परानपुर गाँव 'परती परिकथा' का प्रमुख रंगमंच है। इसमें पूर्णिया जिले के उत्तर में नेपाल सीमा और दक्षिण में जलालगढ़ तक के विशाल बंजर परती पड़े भू-भाग की वेदना की कथा है। इस विशाल क्षेत्र का बालू की ढाल में बदल जाने का भौगोलिक कारण भी रेणु ने दिया है। डायन कोसी जिसे इस क्षेत्र का अभिशाप कहा जाता है- इस नदी का भी एक मानवीय रूप उन्होंने प्रस्तुत किया है- अपमान। निराशा से उपेक्षित एक नारी का झंझावती रूप कोसी नदी को प्रदान किया है, जो क्रोध में आकर इलाके का इलाका जलमग्न करती, खेतों को बालु को राशि में बदलती, भागती चली जाती है। इसी कोसी नदी से पीड़ित गाँव परानपुर में जितेन्द्र या जित्तन बाबू जैसे स्पप्न-जीवी नौजवान रहते हैं; जिनके सपनों में इस धरती को अभिशाप मुक्त करने की कामना है। भूमि समस्या इस उपन्यास की मुख्य समस्या है। सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से सामंतवाद के साए में पलनेवाला ग्रामीण वर्ग तथा आर्थिक दृष्टि से इसी के साथ पल्लवित होने वाले निम्न वर्ग के कृषकों का वर्ग भी परानपुर ग्राम में है। जमींदारी-उन्मूलन के बाद भी भूमिहीनों की समस्या ज्यों-की-त्यों बनी रही। लैंड सेटलमेंट ने भी जमींदारी को बनाए रखने में भूमिका अदा की। रेणु ने लिखा है- ''हिन्दुस्तान में संभवतः सबसे पहले पूर्णिया जिले पर ही लैंड सर्वे आ॰परेशन किया गया। जिले के जमींदारों और राजाओं की जमींदारियों का विनाश अवश्य हुआ है किन्तु हिन्दुस्तान के सबसे बड़े किसान यहीं निवास करते हैं।''[7] भूमि समस्या से संबंधित जातिवाद भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि संपूर्ण गाँव की आत्मा जातीय आधार पर विभक्त है। नट्टिन टोली, मुसलमान टोली, भूमिहार टोली और जितेन्द्र की हवेली के पक्ष का उपन्यास में सजीव अंकन हुआ है। एक स्थान पर रेणु ने लिखा है- ''पिछले आठ-दस वर्षों से जातिवाद ने काफी जोर पकड़ा है। राजनीतिक पार्टियाँ भी जातिवाद की सहायता से संगठन करना जायज समझती है।''[8] इस जातिवाद के कारण ही राजनीति में अनेक प्रकार के भ्रष्टाचार प्रचलित हैं। लुत्तों तो मिसिर के बेटे को दागने के लिए ही कांग्रेस में आया है। सभी जान गए हैं कि कम्युनिस्ट तथा सोशलिस्ट पार्टी वाले जिनकी सहायता करेंगे उन्हें जमीन नहीं मिलेगी। भारतीय गाँव की सामाजिक तथा राजनैतिक व नैतिक समस्याएँ भूमि के चारों ओर घूमती हैं। लेखक ने लुत्तों, वीरभद्र, जितेन्द्र और समसुद्दीन आदि के माध्यम से इस स्थिति को स्पष्ट किया है। नैतिक मूल्यों के विघटन के कारण सारा परानपुर पारस्परिक संघर्ष और प्रतिद्वंद्विता का केन्द्र बना हुआ है।

इसलिए न केवल परानपुर अपितु आस-पास के सभी गाँव भी टूट रहे हैं। इस प्रकार रेणु ने 'परती परिकथा' में मानवीय संबंधों एवं समाज के बदले संदर्भ में व्यक्तियों की उत्तरोत्तर अधिक संश्लिष्ट होने वाली मानसिक प्रक्रियाओं और नैतिक दबावों का जो अंकन किया है, सामाजिक, राजनैतिक आंदोलन के रूप में अत्यंत सराहनीय है। इस उपन्यास की भाषा भी देशीयता को लिए हुए हैं। आंचलिक भाषा में होने के कारण भाषा की स्वभाविकता, माधुर्य, स्थानीय बोली, रंग यहाँ अधिक उभरा है। रेणु में भाषा की कलात्मकता की अपार क्षमता है जिस कारण अनेक वर्णन सजीव बनकर उभर आते हैं। ध्वनि के संयोग से भाषा की व्यंजना-शक्ति और भी बढ़ गई है। अनेक देशज शब्दों का प्रयोग वातावरण की सृष्टि में सहायक है। सुन्दरि नैका कथा का एक अंश उद्धृत है- ''भोर में नायली आई सुन्दरि नैका। देखा एक कुण्ड पानी से लबालब है। कुण्ड के पानी में पूर्णिमा का चाँद सोने-चाँदी को एक साथ घोलने के लिए रूक गया। थोड़ी देर-उस ताड़ की पुनगी के पास।''[9] 'परती परिकथा' जैसे विशाल उपन्यास को इस संक्षिप्त परिचय में पूरी तरह नहीं देखा जा सकता। एक अंगड़ाई लेते हुए पूरे युग की आशा-आकांक्षा, हार-जीत, प्रेम-संघर्ष, उदारता- ओछापन सब कुछ वहाँ है। फिर भी मैंने उपन्यास के सभी पक्षों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। रेणु की सबसे बड़ी शक्ति है- ग्रामीण जीवन के आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक और सामाजिक- सांस्कृतिक स्तरों का व्यापक और गहरा उद्घाटन उसकी लोक- रीति और उसके लोक-व्यवहार की पूर्ण और सफल अभिव्यक्ति, जिससे नवीन दृष्टि का उन्मेष होता है। इस प्रकार 'परती- परिकथा' का समाज आस्था और विश्वास के स्वरों में परिपूर्ण और विषमताओं से संघर्ष करता हुआ नव-निर्माण में संलग्न है। रेणु ने 'परती परिकथा' जैसा धरती का महाकाव्य इसलिए रचा कि गाँव की अंतहीन प्रान्तर भूमि और हरियाली के बीच का संबंध स्पष्ट हो सके। दीर्घतपा: वर्किंग वीमेन्स हाॅस्टल का खुरदरा सच दीर्घतपा की भूमिका में वे लिखते हैं- ''यह उपन्यास नहीं, आंचलिक नहीं.... हाँ आंचलिक ही..... किन्तु अर्थात् यह उपन्यास, उपन्यास है।''[10] इस उपन्यास में लेखक ने अपने पूर्व प्रकाशित दोनों उपन्यासों 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' के ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि से भिन्न शहरी जीवन की भूमि चुनी है। इसका घटना स्थल गाँव न होकर शहर है। उपन्यास का कथांचल है-बांकीपुर (पटना) का वीमेन्स वेलफेयर बोर्ड, जिसकी समाजसेवी संस्थाओं में बड़ी प्रतिष्ठा है। इसके साथ ही एक वर्किंग वीमेन्स होस्टल भी चलाया जा रहा है। 'कलंकमुक्ति' उर्फ 'दीर्घतपा' की कथावस्तु का निर्माण 'वर्किंग वीमेंस हाॅस्टल' को लेकर किया गया है। 'कलंकमुक्ति' का संसार, नारी-जीवन के क्रूरतम अन्तर्विरोधों का संसार है, जिसे रेणु ने बड़ी ही सहजता के साथ रचा है। इसमें चित्रित 'वर्किंग वीमेंस हाॅस्टल' का चकलाघर में बदला जाना भारतीय समाज के नियंता वर्ग के दुहरे चरित्र और झूठे लोकतंत्र की विडंबनाओं का कच्चा-चिट्ठा है। प्रश्न उठता है कि इस सबके लिए जिम्मेदार कौन है? और उपन्यास की प्रत्येक पंक्ति इस प्रश्न का उत्तर देती है।''[11] 'दीर्घतपा' एक ऐसी नारी की कहानी है जो दीर्घकाल से ही तपस्या को अपना लक्ष्य समझकर अपने को समर्पित करती रहती है। वह ''बेला बाँके बिहारी लाल के दोस्तों के पाॅकेट क्रांतिकारी दल के आवत्र्त से उभरकर लहरों पर तैरती, बनारस की गलियों और काल कोठरियों से निकलकर, गंगा में पाप धोकर जीवन पर जिसका विश्वास जमा था।''[12] सब कुछ सहन कर गई, देश की स्वतंत्रता के नाम पर। अपने ऊपर लगाए झूठे आरोपों को स्वीकारती हुई अपने जीवन में नित्यप्रति आने वाले नए प्रयोगों से वह घबराती नहीं, अपितु अपने जीवन को ही विसर्जित कर देती है। यही वह दीर्घतपा की 'बेलागुप्त' है जो कि बांकीपुर वीमेन्स हाॅस्टल की प्रबंधक हैं। इस उपन्यास में दिखाया गया है कि, 1947 के देश विभाजन के बाद पश्चिमी सभ्यता के अभिशाप स्वरूप चारित्रिक गिरावट, तिकड़म, सुरा-सुन्दरी के प्रति नितांत भोगवादी प्रवृति आदि कुप्रवृत्तियाँ बहुत तेजी से बढ़ी हैं। रेणु ने वीमेंस वेलफेयर बोर्ड के चित्रण में 'देश' और 'काल' की इस वृत्ति को बड़ी सफाई से चित्रित किया है। काम-कामुकता और व्याभिचारी आचरणों के चित्र इस दृष्टि से बड़े यथार्थ बन गये हैं। 'दीर्घतपा' में जहाँ बेला गुप्त और रमला बैनर्जी अपने को त्याग, निष्ठा और सेवा के लिए समर्पित करती हैं। वहीं मिसेज आनन्द जैसी स्त्रियों की कमी नहीं है, जो अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रच्छन्न परिवेश में हाॅस्टल की भोली-भाली लड़कियों को उच्च-शासक-वर्ग को सप्लाई कर अपनी स्वार्थपूर्ति करती हैं। वह उन लड़कियों का जीवन बर्बाद करती हैं। अभिजात्य-वर्ग के ये सफेदपोश लड़कियों को खिलौना समझ अपनी काम-तुष्टि करते हैं। मि0 महान्ती और मि0 आनन्द ऐसे व्यक्ति हैं,

जो स्वार्थपूर्ति हेतु अपनी पत्नी मिसेज आनन्द को दूसरों की बाहों में देखने पर भी क्रोधित नहीं होते, उन्हें तो बस स्वार्थ-सिद्धि और रुपयों से मतलब है। 'बागे' जैसे दलाल की तो आज भी देश में कमी नहीं है। लेखक इस बात से पूरी तरह वाकिफ है कि स्त्री चाहे कितनी ही सुन्दर, सुशिक्षित, काम-काजी, उच्चपदाधिकारी क्यों न हो जाए परन्तु पुरुष की निगाह में वह मात्र वासनापूर्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं। इसलिए बांके बिहारी बेला गुप्ता को अपनी देह की भूख मिटाने का साधन मात्र मानता है और कुछ नहीं। वह कहता है- ''तर्क मत करो, बांके पुरुष है। तुम स्त्री..... उसके जब जी में आवेगा- तुम्हारा उपभोग करेगा। उसका चमड़े का पोर्ट फोलियों बैग है- उसे वह जब चाहता है खोलता है, बन्द करता है। चमड़े का थैला तर्क नहीं करता।''[13] विभावती, गौरी देवी, अन्नपूर्णा, कुमारी वीणा जैसे भोली लड़कियाँ जहाँ गाँव के विशुद्ध वातावरण को अभिव्यक्त करती हैं वहीं तारा देवी, कुन्ती देवी और रूक्मिणी जैसी स्त्री हैं जो भोली-भाली लड़कियों को फाँस कर, व्याभिचारी मिसेज आनन्द को सौंप देती हैं जो आगे चलकर इन लड़कियों को बड़े-बड़े अधिकारियों-राजनीतिज्ञों को सप्लाई करती है। इन्हीं स्त्रियों के माध्यम से रेणु ने समलैंगिक प्रवृत्ति को भी उभारा है। अंजू-मंजू जैसी लड़कियों के द्वारा 'काॅल गर्ल' का रूप उभर कर सामने आता है। उपन्यास में उच्च वर्ग की मनोवृत्ति का उद्घाटन यथार्थ के कुरूप चेहरे को उजागर करके रख देता है। इनके मत से ''पार्टी पावर में आए जातीयता फूलेगी। फेवरटिज्म मिटेगा। नहीं। भाई-भतीजावाद भी कायम रहेगा। ....रूलिंग पार्टी का अदना कार्यकर्ता जिला के कलेक्टर की कलम पकड़ने की साहस तब भी करेगा। ....सत्य की विजय नहीं होती है कभी, इसलिए 'सत्यमेव जयते' लिखकर टांगने वाला वाक्य हो गया है। इस वाक्य का प्रथम अक्षर 'अ' लुप्त है।''[14] इस प्रकार उच्च वर्ग ने समाज के हर क्षेत्र में अपना आधिपत्य जमा लिया है। भ्रष्टाचार का जोर तो हाॅस्टल में इस सीमा तक बढ़ चुका है कि बड़े-बड़े अधिकारी हाॅस्टल के प्रबंधकों से मिलकर किसी भी लड़की को अपने मनोरंजन के लिए अपने घर पर बुला सकते हैं और उन्हें हफ्तों गायब भी कर सकते हैं। इस प्रकार पात्रों के सारे क्रियाकलाप वीमेन्स हाॅस्टल के माध्यम से बांकीपुर अंचल को उजागर करने की ओर प्रयत्नशील है। उपन्यास में लेखक ने स्थानीय शब्दों का अनुवाद करना भी उचित नहीं समझा। लेखक का यह कथन द्रष्टव्य है- ''और, मैं कहता हूँ कि मैंने इस उपन्यास में जान-बूझकर ऐसे किसी शब्द का अर्थ नहीं दिया ताकि इसी बात पर फिर एक बार आंचलिक और आंचलिक-लेखन पर बहस हो जाए और यदि आवश्यक समझा जाए तो आंचलिकता की परिभाषा में संशोधन..... परिमार्जन..... (प्रतिबंध)..... क्योंकि उपन्यास, उपन्यास है और उपन्यास होता है।''[15] जुलूस: शरणार्थी समस्या का दूसरा आख्यान जुलूस एक ऐसा उपन्यास है, जिसका शरणार्थी समस्या ने देश के जनमानस को उद्वेलित कर दिया। जुलूस वस्तुतः अपनी जमीन से विस्थापित ऐसे लोगों की कथा है जिन्हें विघटनकारी तत्वों-सांप्रदायिक दरिंदों तथा प्राकृतिक आपदाओं ने अपनी जमीन से उखाड़कर एक प्रश्नवाचक स्थिति में ला दिया है। ऐसे ही असहाय और बेबस लोग जुलूस की शक्ल में सड़क पर उतर आए हैं। इसके मूल में राजनैतिक और सांप्रदायिक शक्तियाँ ही नहीं, वैयक्तिक स्वार्थ, कामोत्तेजना और बर्बरता की भी भूमिकाएँ हैं जिनकी परिणति को भोगते लोगों की निरीहता के प्रति मानवीय संवेदना को जगाने में रेणु को पूर्ण सफलता मिली है। ''हिन्दी में देश के विभाजन की त्रासदी पर अनेक महत्वपूर्ण कथा-कृतियाँ लिखी गई हैं पर वे सभी कथा-कृतियाँ प्रायः पश्चिमी शरणार्थियों पर लिखी गई हैं। पूर्वी बंगाल के शरणार्थियों पर हिन्दी में रेणु का इकलौता उपन्यास 'जुलूस' है। पश्चिम के पंजाबी शरणार्थियों की दशा धीरे-धीरे बेहतर होती गई, पर बंगाली शरणार्थियों की स्थिति अब तक सर्वहारा की बनी हुई है। विभाजन की त्रासदी को व्यक्त करने वाली 'परती परिकथा' में इरावती जैसी महत्वपूर्ण नारी है, जो आजाद भारत में भी बलात्कार और यंत्रणा का शिकार होती है। उसके भीतर से प्रेम का स्रोत धीरे-धीरे सूख गया है। इरावती का ही अगला चरण है पवित्रा। पवित्रा जगह-जगह अनेक लोगों की आँखों में कासिम को झांकता हुआ पाती हैं, पर उससे त्रस्त नहीं होती, उसका इस्तेमाल करती है।''[16] पवित्रा अपने पवित्र आचरण से तालेवर गोड़ी जैसे भूखे और लालची व्यक्ति को बेटी मानने के लिए मजबूर कर उसे अपना अतिरिक्त धन दान करने के लिए विवश कर देती है। भले ही अंत में गाँव वालों की भर्त्सना से वह उदास, अकेली एवं आत्मकेन्द्रित होने लगती है परन्तु लेखक उसे जीवन से हार नहीं मानने देता और उसे एक समाज सेविका के रूप में चित्रित कर कथा के अन्त में यह वक्तव्य कहलवाता है-

''मैं जी गयी फिर। मैं अकेली नहीं। मैं कहीं निर्जन में नहीं। मैं एक विशाल परिवार की बेटी हूँ। .... इन आत्मीय स्वजनों के बीच पारस्परिक सहानुभूति और सहयोगिता को फिर से पापाऊँगी मैं.....। मैं अपनी सत्ता को इस समाज में विलीन कर रही हूँ। लोक संस्कृतिमूलक समाज के गठन के लिए आमि आमा के उत्सर्ग का ूर्लाम। आमि आज जीवने प्रथम बारे अन्य इलहाम।''[17] ''लोग संस्कृतिमूलक समाज की संरचना रेणु का ध्येय और स्वप्न था। इसकी विस्तृत रूपरेखा उन्होंने 'परिकथा' में पंचचक्र वाले रूपक के द्वारा प्रस्तुत की है। जुलूस में रेणु पुनः अपनी जड़ों की ओर लौटते हैं। अर्थात् रेणु सांस्कृतिक उत्थान को तरजीह देते हैं। रेणु ने हमेशा 'बदलाव' को अपने लेखन का विषय बनाया है। जुलूस इसी बदलाव की प्रतिछवि है। यद्यपि उन्होंने सांप्रदायिक संदर्भ में हिन्दुओं की जातिवादिता तथा मुसलमानों की कट्टरता दोनों के चित्रण का साहस किया है, जो कम ही रचनाकारों में सुलभ है। 'जुलूस' के ये पात्र 'भागो नहीं समाज को बदल डालो' के तेवर से लैस हैं। जुलूस में स्वातंत्र्योत्तर ग्राम जीवन ही नहीं बल्कि नगर जीवन का विद्रूपता भी झलक उठी है। इस उपन्यास में यह भी संकेतित होता है कि राजनीति की दुनिया में मूल्यों का जबर्दस्त विघटन हुआ है। अवसरवाद, भाई-भतीजावाद को बढ़ावा दिया जा रहा है। बाढ़ के समय किस प्रकार समाजसेवी (राजनेता) अपनी चांदी काटते हैं इसका भी बड़ा यथार्थपूर्ण चित्रण किया है। इस प्रकार 'जुलूस' भारत के सरहदी गाँव के विस्थापितों की जीवनगाथा का एक प्रतीक बनकर उभरने में सफल हुआ है। जिसमें यह स्वीकारा गया है कि आजादी के बाद की राजनीति किस तरह अवसरवादियों की गिरफ्त में आकर गिरती चली गई और लोगों ने गद्दी के लिए धर्म, ईमान यहाँ तक कि देश को भी भुला दिया। स्पष्ट है कि इस उपन्यास के अधिकांश पात्र अपनी जमीन से उखड़कर जुलूस की शक्ल में अज्ञात दिशा की ओर बढ़े जा रहे हैं। ''यह जुलूस कहाँ जा रहा है.... मैं कुछ नहीं जानता। ..... चारों ओर एक बवण्डर मंडरा रहा है, धूल का.....।''[18] रेणु का यह सच हमें सोचने के लिए बाध्य कर देता है। कितने चैराहे: क्रान्ति और पलायन का द्वंद्व यह एक मर्मस्पर्शी गीतिकाव्य के सदृश है। यह विशेषतः किशोर पाठकों को सामने रखकर लिखा गया है। इतिहास में एक ऐसा कालखण्ड था जब कि छोटे-छोटे किशोर आजादी के तराने गाते, सिर पर कफन बांधकर निकल पड़े थे। 'देश' और 'देश' ही जिनका गन्तव्य था। ऐसे नवयुवकों को संबोधित कर लेखक ने अपने इस उपन्यास से यह संदेश दिया है कि स्वधर्म का कार्य करने के लिए अग्रसर होते समय प्रलोभन के चैराहे पर न मुड़ते हुए आगे बढ़ना चाहिए। मनमोहन से बड़े महाराज ने एक बार कहा था- ''अभी सीधे चलो। राह के छांव में कहीं बैठना नहीं। कितने चैराहें आयेंगे। न दाएँ मुड़ना न बाएँ, सीधे चलते जाओ।''[19] इसलिए मनमोहन किसी ओर भी नहीं देखता। ऐसा आचरण करने पर ही तो उसने एक वर्ष में न जाने कितने चैराहों को पार कर लिया। जीवन की ऊबड़-खाबड़ यात्रा और सघन छायाएँ दोनों ही उसके मार्ग को अवरोध करने में असमर्थ रहीं। अररिया कोर्ट का अंचल ही 'कितने चैराहे' उपन्यास का प्रतिपाद्य है जहाँ मनमोहन सिमरबनी से शिक्षा ग्रहण करने के लिए आता है। इस उपन्यास में युगचेतना की गंध अररिया कोर्ट के छात्रों में देखी जा सकती है। इन युवकों में युगबोध की भावना इतनी तीव्रताप से घर कर गई है कि वे इसके लिए प्रत्येक बलिदान करने को तैयार हैं। पृथक् बलिदान बाघा यतीन का होता है। जिस पर प्रियोदा मात्र यही कहता है- ''बात रोने की नहीं, हँसने की है। अब देरी नहीं। स्वराज्य करीब आ रहा है धीरे-धीरे। और भी करेंगे। मारे जायेंगे।''[20] स्वतंत्रता के झंडे को फहराने के लिए प्रियोदा, कृत्यानन्द, अशर्फी, भोला, तपु-एक गिरता, दूसरा आगे बढ़कर उसके हाथ से झंडे ले लेता, दूसरा गिरता, तीसरा झंडा थाम लेता, तीसरे के बाद चैथा....। अंत में ये युवक झंडा फहराने में सफल होते हैं। गाँधीजी की गिरफ्तारी ने तो सभी प्रगतिशील युवकों को उत्तेजित कर दिया। वे मिलकर योजना बनाते हैं, ''हम हड़ताल करेंगे..... स्ट्राइक..... स्कूल नहीं जायेंगे। बाजार बंद रहेगा.....। हम लोग कल खाना नहीं खायेंगे।''[21] वे इस कटु सत्य को जानते हैं कि यदि पूर्ण रूप से मुकाबला न किया तो उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। गाँव में भी नयवुग की चेतना का प्रभाव पड़ता है। स्कूल के लड़कों द्वारा हड़ताल करने पर ग्रामीण लोग उनके खाने की वस्तुओं का प्रबंध करते हैं। प्रियोदा खादी पहनता है, तकली चलाता है। इस प्रकार गाँधीवादी विचारों से अनुप्राणित युग-चेतना 'कितने चैराहे' में पूर्णतया उभरी है। इस उपन्यास में सहज मानवीय सहानुभूति और गुण, रूप, वृत्ति एवं साहचर्यजन्य प्रीति की मनोहारी छटा दर्शनीय है। विधवा होने के कारण शरबतिया किसी से प्रेम नहीं कर सकती किन्तु ज्यों ही मनमोहन उसके जीवन में आता है वह

दिनभर फिरकी की तरह काम करती है और मनमोहन को प्यार भी करती है। मनमोहन को भी शरबतिया के आंचल से माँ के आंचल-सी गंध आती है, नमकीन गंध। अररिया कोर्ट की अन्य समस्याएँ भी इस उपन्यास में स्पष्टतः झलक उठी हैं। समाज में हर वर्ग के लोग विद्यमान हैं। एक ओर सन्यासी आश्रम के महाराज जी हैं, जो भगवान की सेवा का अर्थ पीड़ितों की सेवा में देखते हैं। तो दूसरी ओर मोहरिल मामा मुहल्ले के नामी पियक्कड़ हैं। उसकी स्त्री भी कम झगड़ालू और स्वार्थी नहीं। समाज में नारी की दशा युगानुसार पर्याप्त बदल चुकी है। नीलिमा एक नारी है जो पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर देश की स्वतंत्रता के लिए अपने सामथ्र्य के अनुसार कार्य करती है। विधवा शरबतिया अपने प्रगतिशील विचारों के कारण दूसरा विवाह कर सामाजिक कुरीतियों को तोड़ सकने में सफल हो सकी है। अररिया कोर्ट के लोगों की दशा अवस्था भी रेणु की निगाह से अछूती नहीं है। लेखक के शब्दों में - ''महंगाई, अकाल, अनावृष्टि के मारे किसानों पर जमींदारों का जोर-जुल्म अत्याचार होता है।''[22] लोग अपनी गृहस्थी पूर्णरूप से संभालने में असमर्थ हैं। समाज किस स्थिति को प्राप्त कर रहा है रेणु ने उसका समाधान प्रगतिशील युवकों के रूप में किया है। इसलिए किशोर क्लब का निर्माण होता है। स्पष्टतः इस उपन्यास का उद्देश्य व्यक्तिगत सुख-दुख स्वार्थ-मोह से ऊपर उठकर देश के लिए आत्मोत्सर्ग करने वालों के मानवीय संवेदनशील रूप को उभारना और पाठकों के मन में उनकी प्रति श्रद्धा जगाना है ताकि यह परंपरा कायम रह सके। चूंकि चारों तरफ फैले हुए भ्रष्टाचार, व्यक्ति सीमित स्वार्थपरता आदि को देखते हुए उस परंपरा की आवश्यकता का और तीखा बोध जाग उठता है पाठक के मन में। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'कितने चैराहे' उपन्यास आजादी के लिए संघर्ष करने और अपना बलिदान देने वाले युवकों को केन्द्र में रखकर आज के किशोरों में लुप्त हो रहे देशप्रेम, सेवाभाव, त्याग आदि भावनाओं को जागृत करने का संदेश देता है और इस दृष्टि से यह उपन्यास निश्चय ही सफल है। पल्टू बाबू रोड: नैतिक मूल्यों के विघटन 1979 में प्रकाशित 'पल्टू बाबू रोड' उपन्यास में रेणु अपने गाँव इलाके को छोड़कर बैरगाछी जैसे कस्बे को अपनी कथा-भूमि बनाते हैं। बैरगाछी कस्बा जिसकी नियति पल्टू बाबू जैसे काइयाँ, धूर्त, कामुक, बूढ़े के हाथ में है। 'पल्टू बाबू' ने इस कस्बे के लिए ऐसी राह निर्मित की है, जिस पर राजनीतिज्ञ, ठेकेदार, व्यापारी, वकील यानी ऊँचे तबके के लोग इस तरह चल रहे हैं, जैसे वे शतरंज के मोहरे हों और पल्टू बाबू उनके संचालक। एक कस्बे में रह रहे उच्च वर्ग के अन्तर्विरोधों, उसकी गिरावट, राजनीतिक और आर्थिक संबंधों में यौन-व्यापार आदि का चित्रण इस उपन्यास का उद्देश्य रहा है। इस उपन्यास में निम्न वर्ग का बहुत ही कम प्रवेश हो पाया है। आदर्शवादी पात्र एक-दो ही हैं, जो कि हाशिए पर खड़े उदासीन-से दिखाई पड़ते हैं। इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु अमलेन्दु राय का 'फूलबागान' है। 'फूलबागान' अमलेन्दु राय (लट्टू बाबू) की कोठी का नाम है। राय परिवार बैरगाछी कस्बे के बुनियादी परिवारों में है। इस राय परिवार के तीन सम्मानित अतिथि है- पल्टू बाबू, मुरली मनोहर मेहता और छोगमल कुनकुनियाँ। ये सभी राय परिवार पर मेहरबान हैं। और तीनों ने ही राय परिवार की बड़ी लड़की बिजली का चुम्बन लिया है और तीनों उसी के आकर्षण में बंधे होने के कारण राय परिवार को मनमानी लूट करने की छूट दे रहे हैं। जिस गति से पल्टू बाबू ने लट्टू बाबू को पैसा कमवाया उसे देखकर सभी आश्चर्य करने लगे। ''पन्द्रह साल वकालत करने के बाद बिमलेन्दु राय ने जितना जमा किया, उतने रूपयों का कारोबार लट्टू बाबू एक सप्ताह में ही करते-कराते हैं। लट्टू बाबू ब्रह्मवाक्य मानते हैं, पल्टू बाबू की बात को।''[23] धन की अंधी दौड़ में लट्टू बाबू के लिए घर-परिवार की नैतिकता और मर्यादा कोई महत्व नहीं रखती। इस उपन्यास में मध्यवर्ग के जीवन का बड़ा ही प्रामाणिक परिवेश है। श्रेष्ठ मानवीय भावनाओं और आदर्शों के अवमूल्यन की जिस प्रक्रिया का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है, वह प्रक्रिया 'पल्टू बाबू रोड' यानि पल्टू बाबू की जीवन पद्धति है। पल्टू बाबू के लिए प्रेम सिर्फ सेक्स है, नारी केवल भोग्या। स्त्री-पुरुष का प्रेम उनके लिए कोई रोमाँटिक अर्थ नहीं रखता। वे सब कुछ पैसे से खरीदते हैं। उन्होंने बहुत पहले से ही इस तत्व का साक्षात्कार कर लिया है कि सामाजिक प्रतिष्ठा और सामर्थ का साधन पैसा है। राजनीति उनके लिए कोई आदर्श नहीं, बल्कि लोगों को लड़ाने और स्वार्थ-साधन का माध्यम रही है। उन्होंने दुनिया को शतरंज की गोटियों से भिन्न नहीं समझा है- ''पल्टू बाबू की नजर में, सभी शतरंज के प्यादे हैं- फीके हैं, थोड़े हैं। लट्टू बाबू, बिजली, गोधन, मेहता, कुन्तला, फेला, छवि-सभी। सारी दुनिया शतरंज के काले-सादे घर, कहीं गोधन।''[24] इस उपन्यास का सबल

मानवीय पक्ष वह प्रेम है, जो प्रतिशोध का रूप धारण कर लेता है। असफल प्रेमजनित प्रतिशोध ही वह सूत्र है, जो बिजली और कुन्तला की कहानियों को अपने-अपने ढंग से जोड़ता है। दोनों कहानियों के माध्यम से प्रेम को मात्र दैहिक तृप्ति और अर्थोपार्जन का माध्यम बनाने-उसके अवमूल्यित होने की जिस प्रक्रिया का यहाँ उल्लेख हुआ है, वह उपन्यास के संप्रेषण का एक महत्वपूर्ण भाग है। जीवन मूल्यों के क्षरण और विघटन की प्रक्रिया का दूसरा रूप है- आज की राजनीति। राय-परिवार किसी सैद्धांतिक आस्था के कारण अपने को कांग्रेस और सोशलिस्ट जैसे विरोधी शिविरों में विभक्त नहीं करता, बल्कि राजनीतिक प्रभाव और शक्ति-संतुलन के लिए ऐसा करता है। इसी प्रकार मुरली मनोहर मेहता और गोधन राजनीतिक आस्था से नहीं, बल्कि अपने ढंग की अवसरवादिता और प्रभाव-समय के कारण अलग-अलग राजनीतिक दलों में सम्मिलित होते हैं। ''मुरली मनोहर मेहता जिला कांग्रेस कमेटी के मंत्री हैं। जिला कांग्रेस के सभापतिजी का दाहिना हाथ ही नहीं, हाथ पाँव सब कुछ हैं मुरली बाबू। लट्टू बाबू ने जीवन में पहली बार खद्दर की धोती पहनी है। अन्दर गंजी है तो क्या हुआ। ऊपर कुर्ता है खादी का।''[25] स्वतंत्रता के बाद की राजनीति का घिनौनापन और नारेबाजी, दोनों का स्वरूप यहाँ पूरी शक्तिमता से उजागर हुआ है। अनेक भ्रष्टाचारों से भरा पड़ा है यह 'पल्टू बाबू रोड'। पल्टू बाबू अन्तिम समय में 85 वर्ष की उम्र में भोलासाही की बेटी कुंतला सहाय से विवाह करते हैं और शादी की पहली ही रात खत्म हो जाते हैं। भ्रष्टाचार का यह रोड यानि सड़क भारतीय प्रजातंत्र में बेखौफ चालू हैं। नये-नये एस.डी.ओ. आते हैं, कांग्रेस के नेता आते हैं। सब-के-सब मुर्गा और मौगी के चक्कर में फंसे रहते हैं और भ्रष्टाचार का यह सिलसिला अनवरत चलता रहता है। इस प्रकार लेखक ने बड़े सूक्ष्म और सांकेतिक ढंग से समसामयिक भारतीय जीवन संबंधी अपना बोध संप्रेषित करते हुए स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन के मूल्यगत विघटन और आत्मघाती स्वरूप की अभिव्यंजना की है। रेणु की कहानियों का यथार्थ जगत स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानीकारों से फणीश्वरनाथ 'रेणु' का विशेष स्थान है। विशेष स्थान इसलिए भी कि वे नई कहानी की प्रवृत्तियों से गुजरते हुए समकालीन सत्य को एक कलात्मक परिणति तक ले जाते हैं। विशेष इसलिए भी कि उन्होंने अन्य कहानीकारों से अलग हटकर एक नई जमीन यानि ग्रामीण जमीन, जहाँ के जीवन को उन्होंने गहराई से महसूस किया है जिसके द्वारा उसके रूप-रंग, गंध, स्पर्श, सुख-दुख आदि का गहरा अनुभव प्राप्त किया। दरअसल नई कहानी को ग्रामीण अंचल के अनुभूत जीवन से जोड़कर संवेदना, चरित्र और शिल्प के लिए नये आयामों से जोड़ने का काम रेणु ने ही किया। इस प्रकार उन्होंने न केवल नई कहानी को यथार्थ का एक जीवंत आयाम दिया बल्कि उसे अनुभवगत गहराई भी दी। रेणु द्वारा रचित तीन कहानी संग्रह हैं- 1. ठुमरी, 2. आदिम रात्रि की महक, 3. अगिनखोर। आज 'रेणु रचनावली' के 'पांच खण्डों' में रेणु की तमाम उपलब्ध कृतियाँ संयोजित हैं। पहला खण्ड रेणु की सम्पूर्ण कहानियों का है इसमें कुल 63 कहानियाँ संकलित हैं। जिसमें ये तीनों कहानी संग्रहों की कहानियाँ संग्रहित हैं। नयी कहानी की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन्होंने परम्परागत कहानीकारों की कहानी यह संरचना के स्थान पर सीधे-सीधे मानवीय संकट को अपनी कहानियों के यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया। इन तीनों कहानी संग्रहों के कथ्य और संवेदना की पहचान की जाए तो दो बातें दिखाई पड़ेगी। पहली बात तो यह कि रेणु की अधिकांश कहानियों की धुरी प्रेम है। दूसरी बात यह है कि इन कहानियों में प्रेम या सेक्स होने के बावजूद उनमें अनेक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक विसंगतियों को समेट लिया गया है। इसलिए इनकी कहानियों को अलग-अलग वर्गों में बाँटना जरा मुश्किल काम है। फिर भी अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से उन्हें कुछ वर्गों में बाँटने का प्रयास किया, चूँकि रेणु की कहानियाँ परिवेश से रू-ब-रू होते जूझते आदमी की जिस जिंदगी को गाती हैं, उसके विविध परिदृश्य अपने पटल पर संवेदनात्मक विधान विधान के अनेक आयाम खोलते हैं। अतः उनकी कहानियों की कुछ श्रेणियाँ इस प्रकार हैं- 1. कुछ कहानियों की मुख्य संवेदना प्रेम हैं और उसी के सन्दर्भ में सामाजिक जीवन के दूसरे पहलू उद्घाटित होते हैं। आज व्यावसायिक बंधनों की कसमकसाहट के बीच समकालीन जीवन की भावनात्मक दुखान्त को आधुनिक संकट के रूप में प्रस्तुत किया गया है- तीसरी कसम, रसप्रिया, संवदिया, ठेस। 2. कुछ कहानियाँ स्वतंत्रता के बाद जीवन में चैतरफा घुसपैठ करती भ्रष्ट राजनीति अपनी निर्गतिशीलता, अमानवीयता और यथार्थ की चक्की में पिसते शोषित मनुष्य की तकलीफ प्रस्तावित करती है- आत्मसाक्षी, जलवा, पुरानी कहानी नया

पाठ। 3. कुछ कहानियाँ शहर जाने और शहर को पूर्णतः स्वीकार न कर पाने की बेबसी के शिकार ग्रामीणों के टूटने की कहानी हैं- विघटन के क्षण, उच्चाटन, आदिम रात्रि की महक। 4. कुछ कहानियाँ आधुनिक परिस्थितियों में पड़कर अर्थहीन होते अतीत की ट्रेजडी में और अपना निर्णय स्वयं ले सकने की क्षमता की पहचान करती, अपने हक के लिए अनेक स्तरों पर संघर्षरत नई पीढ़ी बहुस्तरीय तनाव में आधुनिक यथार्थ को प्रतिफलित करती है- आजाद परिन्दे, प्रजासत्ता, शीर्षक हीन। 5. कुछ कहानियाँ परिवेश और वैशिष्ट्य के भीतर ही पात्र और परिस्थिति अंचल विशेष की जिंदगी की पर्तें खोलते हुए रागात्मक सूत्रों की सृजनात्मक खोज करती हुई प्रगतिशील कहानियाँ हैं- पंचलाइट, लाल पान की बेगम, नैना जोगिन, तीर्थोद्क। रेणु विविध प्रकार की संवेदनाओं को परस्पर गुंजित कर एक विशिष्ट कथ्य-संसार निर्मित कर लेते हैं और अपने समय के ग्रामीण जीवन के विविध अंतरंग और बहिरंग रंगों की गहरी अनुभूति उन्हें हैं। प्रेम या सेक्स की धुरी वाली कहानियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कहानी है- 'तीसरी कसम'। 1.तीसरी कसम यह रेणु की सर्वाधिक लोकप्रिय तथा हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में इसका विशेष स्थान है। इस कहानी में सामाजिक परिवेश के बीच प्रेम की संवेदना निर्मित की गई है। नई कहानी अपने जिये हुए परिवेश और अनुभवों की कहानी है। जहाँ व्यक्ति के मन और परिवेश का गहरा संबंध दिखाई पड़ता है। रेणु में नई कहानी की यह विशेषता और भी गहराई से उभरी है। यहाँ व्यक्ति का मन अपने परिवेश के सन्दर्भों, मान्यताओं, प्राकृतिक दृश्यों और लोक-गाथाओं, कथाओं से जुड़ जाता है। इसलिए इस व्यक्ति मन को केन्द्रित करके जो प्रेम कथा उभरती है, उसका अपना विशेष स्वरूप होता है। वह अधिक व्यापक, जीवंत और विश्वसनीय होती है। इस कहानी की कथावस्तु पर डा॰. हरदयाल का कहना है '' 'तीसरी कसम' की वस्तु प्रेम है। अतः इस कहानी को प्रेम कहानी कहा जा सकता है। प्रेम के अनुभव को रेणु ने बड़ी संवेदनशीलता के साथ पकड़ा है और बड़ी कुशलता के साथ अभिव्यक्त किया है।''[26] 'तीसरी कसम' हीरामन नामक एक देहाती गाड़ीवान और हीराबाई नामक एक शहरी नर्तकी के बीच चलने वाले प्रेम के मनोव्यापार की कहानी है। लेखक ने इन दो विरोधी छोरों पर निवास करने वाले दो पात्रों को देहात के एक खुले परिवेश में मिला दिया है। दोनों की प्रणय संवेदना की एक अनुपम विशेषता है अमुखरता अर्थात दोनों ही का प्रेम भीतर ही भीतर थरथराता है और कुछ बोलता नहीं, उसके क्रियात्मक संकेतों से उसकी अभिव्यक्ति अवश्य होती है। ''हीरामन ने आँख की कनखियों से देखकर, उसका सवारी.... मीता..... हीराबाई की आँखें गुजुर-गुजुर उसको हेर रही हैं। हीरामन के मन में कोई अजानी रागिनी बज उठी। सारी देह सिरसिरा रही है।''[27] इस प्रकार एक दूसरे के प्रति अपना गहरा लगाव अपने व्यवहार से व्यक्त करते हैं। हीराबाई और हीरामन अपनी स्थिति और परिवेश में कहीं भी आधुनिक दिखाई नहीं देते, लेकिन प्रेम की जिस ट्रेजडी को वे धारण करते हैं वह समकालीन परिस्थितियों में जीवन निर्वाह के सामने मनुष्य के भावात्मक जीवन के परास्त हो जाने का और ट्रेजडी में पर्यवसित हो जाने का आधुनिक संकट ही है। इसके अतिरिक्त एक नया पाश्र्व और खुलता है। वह है- हीरामन और हीराबाई प्रेम संबंधों से अलग अपने-अपने व्यवसाय द्वारा शोषित होते दिखाई पड़ते हैं। हीराबाई स्वयं कहती हैं- ''महुआ घटवारिन को सौदागरों ने खरीद जो लिया है गुरु जी।'' [28] अतः इस वाक्य से नारी की बेबसी, लाचारी स्पष्ट झलकती है। वह आजीविका के लिए, व्यवसायिक दुनिया का एक अंग मात्र बन गई है। दोनों की नियति, दोनों की भावात्मक एकता को क्रिया में परिणत होने नहीं देती और इसलिए एक दिन हीराबाई अपनी कंपनी के साथ वहाँ से चली जाती है। हीरामन नौटंकी की किसी बाई को गाड़ी में न बिठाने की 'तीसरी कसम' खाता है। इस प्रकार यह प्रेम कथा ''एक द्वन्द्व से गुजरती हुई एक घनीभूत वेदना के बिन्दु पर थर्राती हुई समाप्त हो जाती है।''[29] 2. **रसप्रिया** एक विशेष सामाजिक परिवेश के बीच 'रसप्रिया' कहानी की प्रेम-संवेदना निर्मित की गई है। मिरदंगिया, पंचकौड़ी, मोहना की माँ और मोहना के बीच कहानी की संवेदना तनी हुई है। पंचकौड़ी पहले नाच में मिरदंगिया बजाता था। उसी समय अपने गुरु की लड़की (मोहना की माँ) से उसका प्रेम-संबंध हो गया। परन्तु स्वयं विजातीय होने के कारण रामपतिया से विवाह न कर, उसे अकेला छोड़कर स्वयं को रसप्रिया यानि कला के लिए पूर्ण समर्पित कर देता है परन्तु दुर्भाग्यवश ऊँगली टेढ़ी हो जाने से उसकी मंडली ही टूट गई और जिन्हें अपना बनाकर उसने कला सिखाई वे भी उसे अपमानित करके अकेला छोड़ गए। अतः जो रसप्रिया कभी कला हुआ करती थी अब भीख माँगने का साधन बन गयी है। इस प्रकार लेखक ने कला

के घटते महत्व को भी स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है- ''बेकार जिंदगी में मृदंग ने बड़ा काम किया। बेकारी का एकमात्र सहारा-मृदंग! एक युग से वह गले में मृदंग लटकाकर भीख माँग रहा है- धा-तिं, धा-तिंग!''[30] और साथ ही जातिगत भेदभाव को भी स्पष्ट किया है। बहुत दिनों के बाद उसकी भेंट मोहना से हुई और बाद में उसे मालूम पड़ा कि मोहना उसकी प्रेमिका का बेटा है। इस अवस्था में उसकी मानसिकता की पर्तें उद्घाटित होने लगीं। लेखक ने इन तीनों पात्रों को परस्पर तान कर एक गहरे त्रासद प्रभाव की अभिव्यक्ति की है। ''मोहना की माँ मिरदंगिया से नफरत करती है किन्तु कैसी विडम्बना है कि मोहना मिरदंगिया का ही बेटा है और उसकी माँ इसलिए मिरदंगिया से नफरत करती हुई उसके प्रति कहीं-न-कहीं करूण और कोमल है। मोहन इन दोंनों की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ होकर मिरंगिया के प्रति आसक्ति-विरक्ति के झूले में झूलता है।''[31] इस प्रकार इस प्रेम कथा में भी सामाजिक या परिवेशगत यथार्थ व्याप्त है। 3. संवदिया विघटित सामंतीय जीवन तथा पारिवारिक विघटन के आधुनिक यथार्थ और गाँव की अपनी जमीन की गंध से जुड़े स्वाभिमानी मन की परिस्थितियों को अत्यंत संवेदनशील तरीके से प्रस्तुत करती है- 'संवदिया' कहानी! आदि से अंत तक पूरी कहानी मानव-मानव के बीच खत्म हुई जातीय रागात्मकता की करूण अनुभूति से सराबोर है। ऊपर- ऊपर से तो बड़ी बहुरिया का दुःख उसकी गरीबी और लाचारी है जहाँ वह पति के मरने के पश्चात् तीन-तीन देवरों के बावजूद भी अकेली है। ''बड़े भैया के मरने के बाद ही जैसे सब खेल खत्म हो गया। तीनों भाईयों ने आपस में लड़ाई-झगड़ा शुरू किया..... तीनों भाई गाँव छोड़कर शहर में जा बसे, रह गयी बड़ी बहुरिया कहाँ जाती बेचारी।''[32] बड़ी बहुरिया का दुःख असल में संवेदनाओं, सांस्कृतिक मूल्यों में निरन्तर आती गिरावट से ऊपजा है, जिनके साथ वह समझौता नहीं कर पाती। ''देवर-देवरानियाँ भी कितने बेदर्द हैं। ठीक आगहनी धान के समय बाल-बच्चों को लेकर शहर से आयेंगे। दस-पन्द्रह दिनों में कर्ज-उधार की ढेरी लगाकर, वापस जाते समय दो-दो मन के हिसाब से चावल-चूड़ा ले जायेंगे..... फिर उलटकर कभी नहीं देखते....।''[33] हरगोबिन की स्थिति भी बिल्कुल यही है इसलिए वह बड़ी बहुरिया के दुःखों का सहभागी बनता है वह बड़ी बहुरिया का संदेश ''....माँ से कहना मैं भाई-भाभियों की नौकरी करके पेट पाल लूँगी। बच्चों की जूठन खाकर एक कोने में पड़ी रहूँगी, लेकिन यहाँ अब नहीं.... अब नहीं रह सकूँगी। ....बथुआ साग खाकर कब तक जीऊँ?[34] यह संदेश सुन हरगोबिन का रोम-रोम कलपने लगता है। यह शर्म ग्लानि के मारे उसका यह संदेश बड़ी बहुरिया की माँ के घर पहुँचने के बावजूद भी नहीं कह पाता। उसे लगता है कि इस गाँव के लोग उसके गाँव पर थूकेंगे- कैसा गाँव है जहाँ लक्ष्मी जैसी बहुरिया दुःख भोग रही है। इधर बड़ी बहुरिया भी संवाद कह देने के बाद गाँव-भर की नामूसी की इसी व्यथा से पछता रही है। अंत में हरगोबिन बिना संवाद कहे लौट ही नहीं आता, वरन पूर्ण निश्चय के साथ, भरे मन से आकर बड़ी बहुरिया से कहता है, ''मैं तुम्हारा संवाद नहीं कह सका।..... तुम गाँव छोड़कर मत जाओ। तुमको कोई कष्ट नहीं होने दूँगा। मैं तुम्हारा बेटा! बड़ी बहुरिया, तुम मेरी माँ, सारे गाँव की माँ हो। मैं अब निठल्ला बैठा नहीं रहूँगा। ...बोलो, बड़ी माँ तुम.... तुम गाँव छोड़कर चली तो नहीं जाओगी? बोलो....।''[35] इस प्रकार रेणु सिर्फ वैचारिक पीठिका देकर चुप नहीं होते, उसे कर्म वेदी पर ला खड़ा करते हैं। मूल्यहीनता के बीच मूल्यवत्ता को प्रतिष्ठित करने की क्रियाशीलता। आज की व्यक्तिवादिता परक आधुनिकता इस मूल्यवत्ता के नाम पर सस्ते समाधानों; बड़ी बहुरिया की दूसरी शादी की राय देते और हरगोबिन की गलदश्रु भावुकता पर छींटाकसी करते। वे लोग भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों के विघटन व समाज की मानवीय मर्यादाओं के स्खलन से उपजी पीड़ा के स्तर पर हरगोबिन की अंतरंगता तक पहुँच ही नहीं पाते। हरगोबिन द्वारा बेटा बनकर पूरे जीवन बड़ी बहुरिया को संरक्षण देने में लेखक जिस मानवीय गरिमा को प्रतिष्ठित, पुनर्जीवित करता है, वह आज के सुविधा भोगी-भौतिक परस्त जगत के लिए मुश्किल क्रिया-व्यापार है। 4. **ठेस** ठेस कहानी गाँव की माटी में रची-बसी लोक-कलाओं के ह्रास की अवांछनीय और लोक-कलाकारों के उपेक्षित जीवन की करूण स्थिति पाठकों के समक्ष उभारती है। यह कहानी सामाजिक जीवन के यथार्थ को पूरी सच्चाई के साथ भी अंकित करती है। आज के लोग मनुष्यता की भावना की कद्र करना मूर्खता तथा पिछड़ापन समझते हैं, क्योंकि उपयोगितावाद की दृष्टि प्रबल हो गयी है। इसलिए छोटी चाची सिरचन का अपमान बिना किसी मानवीय संवेदनाओं का ध्यान रखते हुए आसानी से कर देती है ''इस मुँहझौंसे के न मुँह में लगाम है, न आँख में

शील। पैसा खर्च करने पर सैकड़ों चिकें मिलेंगी। बाँतरटोली की औरतें सिर पर गट्ठर लेकर गली-गली मारी फिरती हैं।''[36] गरीब से गरीब कलाकार में कला-शक्ति के साथ स्वाभिमान की ऊष्मा सदैव रहती है। लोग सिरचन पर खर्च करते समय उससे उतना लाभ अवश्य प्राप्त कर लेना चाहते हैं जिना व्यय करते हैं। उसके हृदय की कोमल कान्त भावना से सरोकार ही नहीं रखना चाहते और इसी भौतिक कसौटी पर उसका मूल्यांकन करने लगते हैं ''बबुआजी! अब नहीं! कान पकड़ता हूँ, अब नहीं....। मोहर छापवाली धोती लेकर क्या करूँगा? कौन पहनेगा.....? ससुरी खुद मरी, बेटे-बेटियों को ले गयी अपने साथ। बबुआजी, मेरी घरवाली जिन्दा रहती तो मैं ऐसी दुर्दशा भोगता? इस शीतलपाटी को छूकर कहता हूँ, अब यह काम नहीं करूँगा। ...गाँव भर में तुम्हारी हवेली में मेरी कदर होती थी। ... अब क्या? मैं चुपचाप वापस लौट आया। समझ गया, कलाकार के दिल में ठेस लगी है।''[37] अंत में रेणु ने इस संवेदनहीन होते जा रहे समाज में उपयोगितावाद के बावजूद भी सिरचन द्वारा मानवीय एवं भावनात्मक लगाव को संप्रेषित करने का प्रयास किया है। घर परिवार वालों से अपमानित होने के बावजूद भी जहाँ वह मानू दीदी को अपनी ओर से चिक देते हुए कहता है- ''खिड़की के पास खड़े होकर सिरचन ने हकलाते हुए कहा, ''यह मेरी ओर से है। सब चीज है दी कीदी! शीतलपाटी, चिक और एक जोड़ी आसनी, कुश की गाड़ी चल पड़ी। मानू मोहन छापवाली धोती का दाम निकालकर देने लगी। सिरचन ने जीभ को दाँत से काटकर, दोनो हाथ जोड़ दिये।''[38] 5. **आत्मसाक्षी** यह एक राजनीतिक कहानी है। जिसमें स्वतंत्रता के बाद की जिन्दगी में घटित होता अजीब सा बदलाव, देश सेवी और सोशलिस्ट पार्टी के प्रतिबद्ध समर्पित कार्यकर्ता 'गनपत' को चिन्तित कर रहा है। गनपत के माध्यम से लेखक ने पार्टी-पार्टी में पड़ी फूट को रेखांकित किया है- 'बावनदास जी, चरखा चलाने और बकरी का दूध पीने से सुराज कैसे मिलेगा, समझा दीजिए जरा।' वहीं इस पार्टी में शामिल नवयुवक वर्ग के भ्रष्ट आचरण को भी व्यक्त किया गया है- ''जिले भर के कामरेड शुरू अगहन में ही बोर-बोरियाँ लेकर पहुँच जाते हैं- ''जिले भर के कामरेड शुरू अगहन में ही बोरे-बोरियाँ लेकर पहुँच जाते हैं- धन वसूली के लिए। किसी को बहिन की शादी में मदद चाहिए, किसी को 'घर-खर्च' के लिए। गनपत को एक ही साथ अपने इलाके की लाज और पार्टी-कामरेडों की इज्जत रखती पड़ी है।''[39] रेणु ने स्वयं इस कहानी के विषय में कहा है- ''आत्मसाक्षी के द्वारा राजनीतिक पार्टियों के आपसी कलह और जनता से अलगाव की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित किया था।''[40] 35 साल से पार्टी के प्रति पूर्ण समर्पित गनपत अपने अतीत में प्रेम में खाये धोखे के बाद अपना सम्पूर्ण जीवन देश सेवा में लगा देता है ''माँ-बाप, भाई-बहन, कुटुम्ब-परिवार, गाँव-समाज सबसे 'नेह-छोह' तोड़कर 'देश' और 'दस' के काम में लग गया। जहाँ कहीं भी सभा होती, गनपत सबसे पहले हाथ में खंजड़ी लेकर गीत शुरू कर देता- हिन्दुओं।''[41] इन सब अतीत की पृष्ठभूमि में कहानी में पार्टी के बंटवारे को केन्द्र में रखकर बड़े से लेकर छोटे तक सभी नेताओं के घिनौने स्वार्थ, आपसी वैमनस्य की गाथा कही है। किसी को इसका दुःख नहीं है, सब लूटने-खसोटने-हड़पने में पड़े हैं। परन्तु गनपत को कोई बताता तक नहीं कि ये सब क्या और क्यों हो रहा है। वह तो पार्टी के बटने पर धरती माँ के दो टुकड़े हो जाने जैसे दुःख से पीड़ित है। और ऐसे में उसकी सेवाओं के बदले में काॅमरेड चन्द्रिका उसे थप्पड़ मारकर पार्टी से बर्खास्त कर देता है- वह चन्द्रिका जिनकी कुल उम्र (35 साल) के जितनी तो, गनपत ने पार्टी की सेवा में बिता दी है। ऊपर से इनाम स्वरूप उसके ऊपर दफ्तर की नौकरानी के साथ इश्कबाजी की तोहमत भी लग जाती है। यह सब इसलिए कि पार्टी आॅफिस और पार्टी की आठ एकड़ जमीन को हथियाना है। यहाँ तक तो कहानी की गति और धारा बिल्कुल साफ और सटीक है। वह सही और अभिप्रेत मर्म को छेदती-तराशती चलती है, पर यहाँ आकर एक अतार्किक आयाम जुड़ता है कि इन सब ज्यादतियों की प्रतिक्रिया स्वरूप गुस्से में आकर गनपत पूरी जमीन पर अधिकार कर लेता है और अपने नाम का कागज भी दिखा लेता है- कैसे यह सब करा देता है, कहानी चुप है। इन कागज के बल पर जाहिर है कि वह अपनी पार्टी के बड़े नेताओं को मुँह तोड़ जवाब देता है और दारोगा तक को वापस लौटा देता है। मानवीय प्रतिक्रिया के तहत यहाँ तक भी बहुत कुछ अस्वाभाविक नहीं लगता, लेकिन इसके आगे 'आत्मसाक्षी' के सार्थकता वाले प्रसंग में गनपत अचानक यह सब जमीन अपनी आत्मा के साक्ष्य पर उनलोगों को वापस कर देता है, जिन्होंने यह जमीन धर्मदान के रूप में दी थी। ''मैं जमीन वापस दे दूँगा लोगों को। दान की दी हुई चीज 'धर्मदा' होती है। इसे

अकेला भोगनेवाला कभी सुख-चैन से नहीं रह सकता। ...और अब मुझसे पब्लिक का काम नहीं हो सकेगा। जब पार्टी ही टूट गयी.....।''[42] इस प्रकार लेखक ने जहाँ राजनीति में मूल्यहीनता सारे मूल्यों को ठेंगा दिखा; मुँह बिरा रही है, ऐसे में मूल्यों को बनाए रखने की लेखक की कवायद एक तरह से लेखक का अंदरूनी लगाव, जो अवचेतन में विश्वास बनकर बैठ गया है, ऐसा कराता है। पर आज इसे किसी भी स्तर पर स्वीकारा जा सकता है या नहीं ये सोचने के लिए लेखक हमें मजबूर करता है। 6. जलवा राजनीति के जटिल दृश्य पटल पर अपना ताना-बाना बुनने वाली इन दो कहानियों की तुलना में 'जलवा' अपेक्षाकृत सपाट कहानी है। यद्यपि यह भी अपने अनुभव में स्वतंत्रता के बाद की राजनीति के साम्प्रदायिक और स्वार्थी होते चले जाने की प्रक्रिया में, मनुष्य द्वारा अपने हित के लिए बनाई गई मनुष्यों की ही इस संस्था द्वारा मनुष्य के शोषण और मानवीयता के ठीक विरोध में खड़ी होने वाली राजनीति और इसकी विडम्बना का शिकार बने ईमानदार व्यक्ति (फातिमा दी) के सक्रिय, लेकिन गलत होते जा रहे रिश्ते को उद्घाटित करती हैं। लेखक ने बताया है कि धर्म या सम्प्रदाय के कट्टर लोगों द्वारा किस प्रकार सार्वजनिक हित में काम करने वालों की दुर्दशा की जाती है। कहानीकार मुसलमान कन्या फातिमा दी के व्यक्तित्व से बहुत अधिक प्रभावित था, लेकिन उसके संबंध में वह अपनी पत्नी से चर्चा इसलिए नहीं करता क्योंकि उसकी पत्नी हिन्दू धर्म के प्रति कट्टर है। फातिमा दी ने सन् 1930 ई0 में भूकम्प-पीड़ित लोगों की जी-जान से सेवा भी की थी। 1943 ई0 में लेखक को फातिमा दी के साथ कुछ समय व्यतीत करने का भी अवसर मिला था। इतना ही नहीं, उन्होंने अनाथ दस्ता के साथ विद्रोहियों का प्रतिरोध भी किया था। मगर मुस्लिम लीग के सदस्यों को यह अच्छा न लगा और उन सबने मिलकर फातिमा दी को काफी बेइज्जत किया और उस कर्तव्यनिष्ठ महिला पर ''जानवरों ने फातिमादि के चेहरे पर एसिड की शीशी उड़ेल दी थी। चेहरा झुलसकर काला हो गया है। आँख खराब हो गया है। ..... हाथ की हड्डी टूट गयी है।''[43] अतः इस कहानी के माध्यम से लेखक ने प्रस्तुत किया है कि जनहित के लिए सभी जाति, धर्म और सम्प्रदाय के लोगों को मिल-जुल कर काम करना चाहिए, तभी समाज या राष्ट्र का उन्नयन संभव है और साथ ही प्रश्न भी उठाया है कि कब तक इस साम्प्रदायिकता का दंश सच्चे देश-भक्त को झेलना पड़ेगा। 7. विघटन के क्षण परिस्थितियों ने व्यक्ति को तोड़ा है। शहरी जीवन में यह टूटन जिस स्तर पर दिखाई देती है, ग्रामीण जीवन का संदर्भ उसे बदल देता है। ग्रामीण जन इतिहास से जूझने, टूटने और उसकी शोषक शक्ति के सामने परास्त हो जाने की पीड़ा एकाधिक स्तर पर भोगता है। इसी बोध को अनुभव की पूरी तात्कालिकता में रेणु की कहानी **'विघटन के क्षण'** वहन करती है। एक ओर किसानों के गाँव रानीडीह का सामान्य जीवन है; जहाँ बड़घरिया हवेली में रहने वाले पात्र विजया, चुरमुन और गंगापार वाली दादी है दूसरी ओर इसी हवेली के एकमात्र वंशघर रामेश्वर चैधरी एम.एल.ए. हैं। जो 'छिटपुट जमीन' की हर साल बिक्री करके, झंझट से फिरी पिछले कई वर्षों से पटना में रह रहे हैं। खुदकाश्त की थोड़ी-सी जमीन और बाग बगीचे बेचकर वे एकदम छुट्टी पर जाना चाहते हैं। ''छुट्टी माने, इस रानीडिह गाँव से, अपनी 'जन्मभूमि' से कोई लगाव-किसी तरह का संबंध नहीं रखना चाहते रामेश्वर बाबू.... मजबूरी है। .... किसी गाँव में अब नहीं रह सकते....।''[44] रामेश्वर बाबू गाँव में रह नहीं सकते और उसकी बेटी विजया गाँव की टूटी मड़ैया का सुख छोड़कर शहर जाना नहीं चाहती, लेकिन शहर जाना उसकी अनिवार्य बेबसी है। परिस्थितियों के इस दबाव में गाँव छोड़कर जाने वाला यह संवेदनशील मन शहर से अपने को जोड़ नहीं पाता। परिणामतः विजया 'विघटन के क्षणों' का अनकहा भयानक दर्द भोगती है। उखड़ने के इस दर्द को चुरमुन अपनी बाल प्रकृति और अतिरिक्त संवेदनशीलता से गहराती है- ''सभी, एक-एक कर गाँव छोड़कर जा रहे हैं।.... पिछले साल से होली का रंग फीका पड़ रहा है। आठ-नौ साल की चुरमुनियाँ की नन्हीं सी जान, न जाने किस संकट की छाया देखकर डर गयी है। क्या रह जायेगा?''[45] उधर फुलकन की शहरी 'गप' गाँव के नौजवानों में नई कसमसाहट जगा रही है- गाँव छोड़कर शहर जाने, पैसा कमाने और बसने के लिए और इन सारी स्थितियों और पात्रों की क्रिया प्रतिक्रियाएँ उखड़ते गाँव की तस्वीर उकेरती चलती है। अगहनी धान के खेतों की लाली, आलू के पौधों की हरी पत्तियाँ और सींची जाती गोभी पटना के रजिन्नर नगर के 'गोलपारक' की रोशनी से रू-ब-रू होती है और इस तेज रोशनी में चैंधियाई आँखों वाला आदमी इस टकराहट में भीतर और बाहर गाँव और शहर का अन्तर्विरोध समझ जाता है, बिखराव के दर्दनाक प्रभाव के साथ। 8. **उच्चाटन** गाँव की

गरीबी, जहालत, भुखमरी, बेरोजगारी, कर्जे आदि के समाधान हेतु जो लोग शहर में जाकर रिक्शा-ड्राइवरी, कुली का काम, होटलों में बरतन माँजने वालों का काम, मूँगफली का, चना मुरमुरा बेचने का काम, किसी आॅफिस में चपरासीगिरी आदि करके नवयुवक जब गाँव में आते हैं, तो शहर की बहुत सारी हवाएँ अपने साथ लाते हैं। 'गोदान' के गोबर में प्रेमचद ने इसी यथार्थ को पकड़ा है 'उच्चाटन' कहानी में भी यही बात है पर साथ-साथ टूटते हुए संबंधों को फिर से जोड़ने की कवायद भी है। गाँव के मिसिरजी से कर्ज लेकर विलसवा ने झुमकी से शादी की और मिसिरजी का अन्याय जब सर से ऊपर हो गया तो वह उनकी भैंस की चरवाही छोड़ पटना भाग गया। वहाँ रिक्शा-ड्राइवरी करके ढाई साल में दो सौ रुपये कमाकर विलसवा वापिस गाँव आया। यह तब करके कि मिसिर का कर्ज तो अदा ही करेगा उनकी बोलती भी बन्द कर देगा- ''विलसिया घर लौटा है रात में..... मिसिर की नाक पर दो-सौ रुपये का 'पुलिंदा फेंक दिया.....। हाँ उसके कुरता के पाॅकेट में लेसेन्स है। सरकारी मोहर वाला। पटना में 'रिक्शा डिलेवरी' करता है.... अपनी घरवाली को नाम धर कर बुलाता है- ए झुमकी?''[46] लेखक ने कहानी के अंत में आदर्शवाद का सहारा लिया है और शहर जाते-जाते विलसवा अब अपनी पत्नी झुमकी के लिए गाँव में बस जाने का निर्णय करता है। यहाँ रेणु यह भी दिखाने का प्रयास करते हैं कि पैसा ही सब कुछ नहीं है पारिवारिक संबंध और उनके प्रति लगाव व्यक्ति को हर प्रकार का सुख देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त इस कहानी में 'अंचल की कई विशेषताएँ उजागर हुई हैं। उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग का शोषण, नई पीढ़ी का इस शोषण के प्रति विद्रोह, देहातों में शहरी हवा का प्रवेश, शहरों की सुख सुविधा के प्रति आकर्षण अपने पूरे आंचलिक संदर्भ के साथ बड़े ही सशक्त ढंग से चित्रित हुआ है। 9. **तीर्थोदक** तीर्थोदक कहानी संयुक्त परिवार के टूटने की कहानी है। बजरंग चैधरी का संयुक्त परिवार विघटन की स्थिति से गुजर रहा है। बाप-बेटा, सास-बहू, पति-पत्नी सभी अपनी इच्छानुसार खाते-पीते, उठते-बैठते और कार्य करते हैं। घर के मुखिया की स्थिति दयनीय होती जा रही है। बजरंग चैधरी पारिवारिक विघटन की विडम्बना को उभारते हुए कहता है- ''मैं पूछता हूँ कि यह घर है या धरमशाला? जिसका जी जब जहाँ चाहा, चला गया, परमस्वतंत्र न सिर पर कोऊ। कल से समझाकर थक गया, लेकिन....। जैसी माँ, वैसी औलाद। तीनों के तीनों के नालायक लड़के मेरे ही घर में कैसे हुए।''[47] एक दूसरा पक्ष कि रिश्तों में अब वह पहले जैसी मधुरता, अपनापन खत्म होता जा रहा है और उसका स्थान पैसा लेता जा रहा है। आज के समय में माँ-बाप, माँ-बेटे, बाप-बेटे, भाई-बहन आदि सभी में पैसों को लेकर तनाव बना रहता है। विष्णु अपनी तीर्थयात्रा पर जाती माँ को रोकते हुए पहले उसे पैसे देने के लिए विवश करता है- ''विष्णु बोलता, 'रूपया देती जाओ, नहीं तो दोनों बागड़ों को बेच दूंगा। लौट के देखना।''[48] पैसे को प्रमुखता देने के साथ-साथ रेणु ने अंधविश्वास की समस्या को भी प्रस्तुत किया है। शशिकान्त की स्त्री अपने पति का ईलाज तीर्थयात्रा में ढूँढ़ती है- ''ऐसी ही किसी लड़की ने उसके पति को शहर में भेड़ बनाकर रख लिया था। पढ़ाई-लिखाई तो चैपट हुई ही, बुद्धि-ज्ञान भी गँवा आये। बाबा वैद्यनाथ उसके पति की बुद्धि फिर से लौटा दें, यही मनौती करने जा रही है वह....। दुहाई बाबा!''[49] इस प्रकार आर्थिक तनावों, व्यक्तिगत सम्पत्ति का मोह, औद्योगिक विकास आदि के कारण संयुक्त परिवार निरंतर विघटित होते जा रहे हैं। 10. **आजाद परिन्दे,** आजाद परिन्दे कहानी रेणु की अन्य कहानियों से भिन्न है। इसमें रेणु ने बाल-मजदूरी जैसी भयंकर समस्या को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। सौतेले बाप के अत्याचार से पीड़ित सुदरसन दफ्तरी की दुकान में लेई लगाकर लिफाफे बनाने का काम करता है इधर सौतेला बाप मारता है- ''छुट्टी है तो घर क्यों नहीं गया अभी तक?.... साले एक दिन तेरी पीठ की चमड़ी फिर सेंकनी होगी।''[50] उधर दुकान का मालिक दो सौ रुपये एडवांस देकर उससे रात-दिन बासी लेई की गंध में काम करवाता है। हरबोला भी अपने माता-पिता के दुव्र्यवहार तथा गाली-गलौज वाले माहौल से आहत होकर पढ़ने की बजाय गलियों में घूमना, गाली देना आदि दुष्प्रवृत्तियों में पड़ जाता है। ''हरबोला हँसकर उतर गया और पास वाली गली में घुसने से पहले उसने एक हवाई गाली फेंकी- ''साले! खनगिन का खसम।''.... हरबोला ने यह गाली दो ही दिन पहले सीखी है।''[51] पढ़ने-लिखने की उम्र में बच्चों का इस दिशा की ओर जाना और माँ-बाप का जिम्मेदारियों से बचना या स्वार्थी होना संबंधों को महत्व न देना, आने वाले समाज का क्या रूप होगा, इसको दर्शाता है। अतः दोनों ही हरबोलवा व सुदर्श न अपने-अपने घरों से निजात पाने के लिए एक खुशनुमा आजाद

जिन्दगी, घरों से निजात पाने के लिए घर छोड़ जाते हैं और एक कम्पनी में काम करने के लिए पहुँच जाते हैं और कभी वापस घर न आने की कसम खाते हैं- ''कम्पनी की नौकरी के लिए जो करना होगा करेंगे। अब लौटकर घर नहीं जाना है। ....थूक है घर को!'' 'पक्का?', ''पक्का''।[52] 11. **पंचलाइट** ग्रामीण समाज के पूरे रचनातन्त्र को, परिवेश और परिस्थिति के माध्यम से रूपायित करते हुए कई स्तरों पर जीवन की द्वन्द्वात्क स्थितियों को 'पंचलाइट' कहानी सामने लाती है। ''गाँव में सब मिलाकर आठ पंचायतें हैं। हरेक जाति की अलग-अलग सभाचट्टी है। सभी पंचायतों में दरी, जाजिम, सतरंजी और पैट्रोमेक्स जिसे गाँव वाले पंचलाइट कहते हैं।''[53] पंचलाइट वह केन्द्र बिन्दु है जिसके द्वारा गाँव की जिन्दगी की परत-दर-परत खुलती है। बिखराव की इस प्रक्रिया में लोगों के चीजों के प्रति, जिन्दगी के प्रति सोचने के रवैये को उद्घाटित करती चलती है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक स्थितियाँ प्रस्तावित होती चलती हैं। जुर्माने से जमा किए गए पैसे से पंचलैट खरीदना गाँव की आर्थिक स्थिति को व्यक्त करता है। समाज में जाति का बंधन, सवर्ण-अवर्ण में भेद-भाव, ऊँच-नीच आदि सामाजिक स्थिति का यथार्थ अंकन है। पंचलाइट विज्ञान और आधुनिकता का प्रतीक बनकर आता है लेकिन यह गाँव में विज्ञान विरोधी रूढ़ियों, अंधविश्वासों से टकरा कर द्वन्द्व और तनाव का कोण उपस्थित करता है। गाँव वाले पंचलाइट के प्रति स्वागत का भाव लिए उत्साहित हैं लेकिन इस उत्साह में भी वे अपने रूढ़िवादी विश्वासों को भूलते नहीं, ''बिना नेम-टेम के कल-कब्जेवाली' चीज का प्रन्याह नहीं करना चाहिए।''[54] इस सबके बावजूद जड़बद्धता, स्थितिशीलता और गलत व्यवस्थाओं को तोड़ने में विज्ञान अप्रत्यक्ष ही सही लेकिन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। जाति से बहिष्कृत गोधन से ही पंचलाइट जलवाकर जाति की इज्जत बचाना इसे संकेतित करता है- ''तुमने जाति की इज्जत रखी है। तुम्हारा सात खून माफ। खूब गाओ सलीमा का गाना।''[55] अतः आत की औद्योगिक सभ्यता में काबिलियत की पूछ ने जाति के बंधन को तोड़ने का जो भरसक प्रयास किया है 'पंचलाइट' इसका सशक्त उदाहरण है। इसलिए मुनरी की माँ 'गुलरी' जो कभी गोधन पर अपनी बेटी छेड़ने का आरोप लगाती हैं, पंचलाइट जलाने पर वह स्वयं कहती हैं- ''आज रात मेरे घर में आना गोधन।'' गोधन ने फिर एक बार मुनरी की ओर देखा। मुनरी की पलकें झुक गयीं।''[56] 12. **नैना जोगिन,** नैना जोगिन कहानी एक पिछड़े सामंती समाज में एक आश्रयविहीन स्त्री की दशा एवं इसकी प्राकृतिक और सामाजिक द्वन्द्वों को उभारती है। 'रतनी' उस माँ की बेठी है जिसने सिर्फ मुँह के जोर से पिछले ग्यारह सालों में पन्द्रह एकड़ जमीन अरजा है पिछवाड़े में लीची के पेड़ हैं, दरवाजे पर नींबू। सूद पर रुपये लगाती है। ''दस पैसा हाथ में हैं और घर में अनाज भी। इसलिए गाँव की जमींदारिन भी है वही।''[57] ये पंक्तियाँ रतनी की घरेलू स्थिति आंकने के साथ गाँव की जिन्दगी की तस्वीर भी बनाती हैं। सात वर्ष की आयु में रतनी द्वारा भरी पंचायत में अपने वृद्ध मालिक की चरित्रहीनता की सप्रमाण व्याख्या एक ओर उसे और उसकी माँ को शक्ति देती है दूसरी ओर उन्हें समाज से अलग ला पटकती है। यही कारण है कि रतनी के पूर्णयुवा हो जाने पर भी गाँव के किसी नौजवान की हिम्मत उससे आँखें मिलाने की नहीं हुई। उसको देखते ही आँखों के सामने पंचायत, थाना, पुलिस, फौजदारी, अदालत, जेल नाचने लगते हैं। दूसरों को इस तरह आतंकित करने वाली विवाह न होने के कारण स्वयं एक स्तर पर कुण्ठित हो जाती है। जबर्दस्ती घरजमाई बनाए गए पति से भी वह तुष्ट नहीं है इसलिए अपनी सारी शक्ति का इस्तेमाल उस समाज के विरोध में घात-प्रतिघात करके करना चाहती है जो उसे एक स्वस्थ पति नहीं दे सका। अपनी मानसिक व्यथा को वह गाली के रूप में बाहर निकालकर समाज पर करारा तमामा मारती है। एक ग्रामीण समाज में जहाँ विवाह और संतान से ही स्त्री की पूर्णता मानी जाती है। वहाँ रतनी अपने आप को कमजोर, असहाय समझती है। शोषण न सहने कर बड़ी दबंगता से उस शोषण का विरोध करने वाली रतनी यानि 'नैना जोगिन' इस स्तर पर कमजोर दिखाई गई है। इसलिए वह संरक्षण हेतु जमींदार बाबू माधोबाबू से जिरह करती है ''मेरा कसूर जो बारह साल से बनवास दिए हुए हैं आप लोग! उस बूढ़े को करनी का फल भरवाया तो क्या बेजा किया? मैं उस समय उसकी पोती की उम्र की थी। ....सो आप लोगों ने खासकर आप दोनों भाइयों ने हम लोगों को 'रंडी' से बदतर कर दिया।''[58] .... यहाँ नारी की कुंठा किस प्रकार बाहर निकल रही है कि सामंती समाज में शोषण का विरोध स्त्री को किस स्थिति तक ले जा सकता है। रतनी माधो के माध्यम से पूरे समाज से चुनौती भरा प्रश्न करती है- ''बोलिए मैं पापिन हूँ? मैं अछूत हूँ? जो भी हूँ, आपकी हेवली में

पली हूँ।''[59] यही रतनी की दुखती रग है जिसके लिए वह समाज को जिम्मेदार मानते हुए निरन्तर हर स्तर पर उससे टकराती है और अपने निश्छल, बेलाग, बेलौस व्यक्तित्व की शक्ति के सहारे समाज को चुनौती देती है। भले आदमियों के इस समाज से वह साफ शब्दों में पूछती है-''भला आदमी? भला आदमी? भला आदमी को 'पूंछ-सिंग' होता है?''[60] माधे बाबू के साथ अपने पति को लेकर ईलाज कराने शहर में आती है और प्रण करती है कि चाहे उसके साथ कोई रहे या ना रहे वह तो..... ''हाँ, जब आ गयी हूँ तो यहाँ हो चाहे लहेरिया सराय, चाहे कलकत्ता.... जहाँ से हो, कोख तो भरके लौटूँगी, गाँव तुमको जाना हो तो माधो बाबू टिकट कटाकर गाड़ी में बिठा देंगे। मैं किस मुँह से लौटूँगी खाली....?''[61] यहाँ कहानी का अंत होता है। इस तरह लेखक ने नारी की सम्पूर्णता उसके माँ बनने की प्रक्रिया में दिखाई है। जिसकी चाहत में रतनी यानि नैना जोगिन जिसकी आँखों में शायद कोई जादू है, क्या कुछ करने को गुजर हो जाती है। अतः नैना समाज से मिली हिकारत को अपनी कमजोरी न बनाकर, शक्ति बनाते हुए गालियों के माध्यम से अपनी मानसिक व्यथा प्रकट करते हुए सशक्त ढंग से जिन्दगी जीती है, हार नहीं मानती। इस प्रकार रेणु की कहानियाँ मूलतः उस ग्राम-समाज की यथार्थपरक, मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है जो सामंती समाज, धर्म, जाति, गरीब, सांस्कृतिक पिछड़ेपन की स्थिति में भी चमकते जुगनू और अंधेरे के संगम की तरह प्रतीत होते हैं। गुप्त की ''अहा! ग्राम्य जीवन की क्या है'', पंत की **'ग्राम्या'** से लेकर गाँधी के 'ग्राम-स्वराज' की कहीं आलोचना है तो कहीं समर्थन। रेणु सामंतवाद से पूंजीवाद के संक्रमण वाले दौर के कथाकार हैं और उनके पात्र इस ऐतिहासिक पर धीमे संक्रमण से प्रभावित हैं। ऐसी स्थिति में भी जीवन की एक उद्दाम भावना उनकी कहानियों में सर्वत्र दीख पड़ती है। उदासी के भीतर निरंतर वर्तमान प्राणशक्ति। कहानियेां का यह जीवित सत्य रेणु को अन्य कई समकालीन लेखकों की रूग्ण मानसिकता से अलग कर देता है। रेणु की कहानियों में जीवन की धड़कन है- बावजूद इसके कि परिस्थितियाँ दम घोटतीं हैं। अपनी आस्था और जिजीविषा जो आज भी मनुष्य में बची हुई हैं, उसी को रेणु अपनी कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। रेणु के गंधवाही संस्मरण और रेखाचित्र यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए समुचित साधन और माध्यम की तलाश लेखक की रचना-प्रक्रिया का अनिवार्य अंग है। रेणु ने अपनी रचनाओं में सभी ज्ञानेन्द्रियों की संवेदना का खुलकर उपयोग किया है। रूप रंग-गंध-ध्वनि-स्पर्श-व्यंजना का ऐसा चितेरा मिलना दुर्लभ है। रेणु व्यक्ति-परिस्थिति और परिवेश को इस तरह से शब्दबद्ध कर देते हैं कि केवल उनका रूप ही सामने नहीं आता बल्कि यह संपूर्ण मुहूर्त मात्र ही रूपायित होकर झलकने-बोलने लगता है। रेणु के संस्मरण और व्यक्ति-रेखाचित्र कम-से-कम शब्दों में हैं, किन्तु अभिव्यक्ति की पूर्णता से भरे हुए। इसी सन्दर्भों में डा॰ चन्द्रशेखर कर्ण का कहना है कि ''रेखा चित्रकार का प्रयोजन किसी व्यक्ति के चरित्र का विश्लेषण करना नहीं चरित्रोद्घाटन करना है। रेखाचित्र में प्रधानता संकेतों की होती है। थोड़ी-सी रेखाओं द्वारा सजीव चित्र बना देना कुशल कलाकार से ही संभव है। एक समर्थ लेखक ही चरित्र संबंधी उत्कृष्ट रेखाएँ खींच सकता है। रेणु ऐसे ही समर्थ कलाकार हैं, जिनकी एक-एक रेखा संवेदनशील और मुखर है। हर शब्द बोलता हुआ। रेणु के रेखाचित्र उनके संस्कार, अनुभव, संवेदनशीलता, आग्रहशीलता और सहज बौद्धिकता के प्रतिफल हैं।''[62] इस दृष्टि से रेणु के रेखाचित्र रामवृक्ष बेनीपुरी के रेखाचित्र के करीब हैं। रेणु के संस्मरणों से रेणु का सच्चा रूप ऐसे भद्र व्यक्ति का रूप, जो साहित्य साधक के रूप में खुद अपने और अपने विषय के महत्व और सीमाओं से परिचित हैं, उभरकर सामने आता है। रेणु श्रेष्ठ अग्रज साहित्यकारों के प्रति श्रद्धाभाव रखते थे। वे अच्छी रचना, रचनाकारों मनुष्य सबसे सहज ही प्रभावित हो जाते थे। वे किसी को भी दूसरों की निगाहों से नहीं परखते थे। यशपाल के विरुद्ध रेणु के कान भरे तो यशपाल की कहानियाँ पढ़कर रेणु अभिभूत हो गये कहा- ''हिन्दी का यह कथाकार यशपाल वही यशपाल, यही मेरे लिए बहुत है।''[63] रेणु चिंतकों, विचारकों और नेताओं को उनके सोच और व्यवहार के बारे में मिली जानकारी के आधार पर परखते थे तथा लेखकों को उनकी रचना और कर्म के आधार पर। अपने इसी दृष्टिकोण के तहत रेणु ने अज्ञेय को एक व्यक्ति, संपादक और पत्राकार के रूप में जो भी मान दिया हो, उनके रचनाकार व्यक्तित्व से बिल्कुल अप्रभावित थे- ''इस नकाबपोश विचित्र लेखक की कहानियों से पहले 'माधुरी' के पुराने अंकों में प्रेमचंद की कई कहानियाँ पढ़ चुका था बुढ़िया और बंदर वाली कहानी कबला.....। कहाँ उन कहानियों की भाषा-भाव की सादगी और कहाँ यह अलग, अचल, अगम, अगोचर, अजब, अज्ञेय की भाषा जिसके

अनेक शब्दों का 'शुद्ध उच्चारण' भी नहीं कर पाता।''[64] रेणु की यह ईमानदारी देखने योग्य है। वे सही परंपरा और सच्चे प्रयोग के हिमायती थे। एक रचनाकार के नाते उन्होंने परंपरा से जोड़कर उसे विकसित करने में अपना विनम्र योगदान किया। उन्हें न तो परंपरा से अंधप्रेम था, न नयेपन का वे तिरस्कार ही करते थे। परंपरा के प्रति तथाकथित नयों की प्रतिक्रिया से क्षुब्ध होकर कहते हैं- ''यों, इधर यह कहने की प्रथा हो गई है कि सभी पुराने लेखक कुण्ठित हो गये हैं जो हूँ सो मैं हूँ। पता नहीं, लेखक पुराना होने पर कुंठित कैसे हो जाता है। लेकिन मैं जो हूँ सो, इन्हीं लोगों के पोथी-पत्तर पढ़कर हुआ हूँ। निष्ठा भक्ति में कमी हुई कि पथराया।''[65] यह निष्ठा-भक्ति व्यक्ति पूजा का पर्याय नहीं, परंपरा के वरेण्य अंश से सीधे-धीरे जुड़ना है। साहित्यकारों से इतर विभिन्न तबके के लोगों के अद्भुत रेखांचित्र रेणु ने खींचे हैं। नवीनतम पीढ़ी के आक्रोश को सहानुभूति देने का साहस 'राम पाठक की डायरी से' में देखते ही बनता है। 'कुसुम लाल' के रेखाचित्र में वे देहात में अपनी सांस्कृतिक जड़ों को भूलते जाना तथा नए फैशन की अंधाधुंध नकल की प्रवृत्ति पर दुःख और क्षोभ प्रकट करते हैं। परंपरा के प्रेरक सांस्कृतिक अंश को जीवन में जीवंत पाकर सहज ही उनका उल्लास प्रकट हो जाता है- ''आजकल गाँव घर का चरवाहा भी 'मेरी नजर लग जाएगी' और 'मेरा महबूब आया है' ही गाता है।''[66] कुसुम लाल, जाहिद अली, रसूल मिसतिरी, दिल बहादुर दाय जैसे सामान्य लोगों के असामान्य व्यक्ति-चित्र रेणु ने इसलिए अंकित किए ताकि हम सामान्य में निहित असामान्य के महत्व को समझ सकें। समाज और दूसरों के अतिरिक्त रेणु ने थोड़ा-सा अपने विषय में भी लिखा है। उनका आत्मरेखा-चित्र उनके बहुरंगी जीवन को हमारे सम्मुख लाता है। अपनी जन्म कुंडली को वे (चित्रगुप्त के स्वरों में भविष्यवाणी के रूप में) इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं: ''आलसी, काकी और क्रोधी यह मनुष्य पहले दर्जे का लोभी होगा- तब चित्रगुप्त जी मुस्कराकर बोले-अहो। इस शैतान-संत की जीवन कथा अवश्य ही मद-मधु और हलाहल में बारी-बारी से लेखनी बोरकर लिखने योग्य है।''[67] क्रांति में अटूट निष्ठा के कारण उन्हें नई पीढ़ी में अपने क्रांतिकारी अतीत को ढूँढ़ने में दिक्कत नहीं होती- ''आज जब झंडा फहराने के लिए डी.एम. आए तो ठीक उसी मुहूर्त में दो लड़कों ने आगे बढ़कर झंडा फहरा दिया। हजारों-हजार दर्शकों की तालियों से पूरा मैदान गूंज उठा।''[68] युवा पीढ़ी के क्रांतिकारिता में उनके दृढ़ विश्वास का यह एक प्रमाण था। रेणु की रचनाओं में एक संभ्रांत-गहनता है। इस संभ्रांतता के कारण रेणु के व्यक्तित्व में सामंतवादी संस्कारों की उपस्थिति का संकेत कमलेश्वर ने दिया है। कमलेश्वर, रेणु का रेखाचित्र खींचते हुए कहते हैं- ''रेणु के नख-शिख में सामंती ताराशा हुआ चेहरा-मोहरा, बहुत सेक्सी होंठ, खुमार भरी आँखें और नर्म हाथ-पैर देखकर किसी बिहारी जमींदारी का आभास होता है। बातचीत में एक अजीब शालीनता और धीरज है।''[69] लेकिन रेणु के जीवन का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि न वे जमींदार थे और न ही सामंत बल्कि वे बिल्कुल सामान्य मनुष्य की तरह थे। रिपोर्ताज: धरती पुत्रों की रपट धरती और धरती-पुत्रों की रिपोर्टिंग से साहित्यिक लेखन प्रारंभ करने वाले रेणु में आश्चर्यजनक संवेदनशीलता है। यह साहित्यिक रिपोर्टिंग मात्र सूचना नहीं देती, यह मानवीय स्तर पर कम्पन उथल-पुथल और आंतरिक जीवनलय के समस्त उतार-चढ़ाव को भी गहराई से उजागर करती है। व्यापाररत जीवन और समाज के संबंधों-तनावों तथा गहरे स्तर पर अंतर्लयन से उत्पन्न जड़ता को मूर्त करने वाले रेणु के तमाम रिपोर्ताज निश्चित रूप से महत्व के हैं। रेणु के सभी रिपोर्ताज शैलीकृत ललित ब्यौरे से भिन्न हैं। श्री रघुवीर सहाय ने ठीक ही लिखा है- ''रेणु का देखना एक ही साथ बाहर और भीतर दोनों ओर होता है। यही उनके ब्यौरों को अर्थ देता है।''[70] इन अर्थ और व्यापार से भरे ब्यौरों में एक पूरी लीक लहर है जो हमें क्रमशः 'मैला आंचल', 'परती परिकथा' से होकर 'ठुमरी' की दुनिया में ले जाती है। ऐसा लगता है जैसे एक ही अविभाज्य तत्व उनकी सभी कृतियों में है। इस अविभाज्य तत्व की व्याख्या से रेणु की कथात्मक संरचना पर ही नई रोशनी नहीं पड़ती, बल्कि उनकी कला का वास्तविक समकालीन अर्थ भी प्रकट होता है। भारत में आधुनिकता की परिकल्पना, ग्राम्यांचलों के राष्ट्रीय धारा में शामिल हुए बगैर असंभव है। रेणु के सभी रिपोर्ताज यही सिद्ध करते हैं कि भारतीय उपमहाद्वीप के स्तर पर ग्राम-समुदायों और अंचलों के जीवन की जड़ता टूट रही है और आजादी के बाद उनकी धड़कनें इसी कालातीत, जीवन के द्वीपों की तरह आत्मनिर्भर (या जड़) गाँवों की वास्तविकता को बदलेंगी, ऐसी क्रांतिकारी आशाएँ अन्य तमाम लोगों के साथ रेणु के मन में भी थीं। उनकी सभी साहित्यिक रपटों का महत्व इस मौलिक कारण से

भी है। रेणु के प्रमुख रिपोर्ताजों में 'ऋणजल: धनजल', श्रुत-अश्रुत पूर्व', 'एकांकी के परिदृश्य', 'नेपाली क्रांति कथा' आदि आते हैं। उन्होंने अपने सर्वश्रेष्ठ रिपोर्ताज 'ऋणजल धनजल' में मनुष्य की त्रासदी का इतना मार्मिक एवं व्यंजक चित्रण किया है जिसमें उनकी मानवीय संवेदनशीलता, गहरी अंतर्दृष्टि, व्यंग्य-कटाक्ष, करूणा का इस तरह अंतर्योजन हुआ है, जो एक साथ ही उनके रचनाकार को महत् ऊँचाई सौंप देता है। बाढ़ और सूखा-अकाल की विभीषिका को वे एक पर्यवेक्षक मात्र की हैसियत से नहीं उसके सहभोक्ता और सहभागी की तरह झेलते हैं। इस लगाव के बिना उसमें वह स्पंदन, मार्मिकता और व्यंजकता पैदा हो ही नहीं सकती। ऐसा वही लेखक कर सकता है, जिसका मनुष्य और उसकी पीड़ा से सीधा और गहरा लगाव हो। फणीश्वरनाथ रेणु जन-जीवन के बहुत निकट से जुड़े लेखक थे। अपने लंबे रिपोर्ताज 'नेपाली क्रांति कथा' के द्वारा वे नेपाल में राणाशाही के विरोध में अपनी जन-पक्षधरता का स्वरूप भी स्पष्ट करते हैं। नेपाल की स्वतंत्रता के लिए वे एक नेपाली स्वतंत्रता के नायक की तरह कार्य करते हैं। इस क्रम में उनकी राजनैतिक सूझ-बूझ और सक्रिय सहभागिता को बखूबी देखा गया। रेणु अपने रिपोर्ताज 'एकांकी के परिदृश्य' में 'ऋणजाल धनजल' और 'श्रुत-अश्रुत पूर्व' की भांति मनुष्य की पीड़ा और आकांक्षाओं को चित्रात्मक ढंग से नहीं उकेरते। ''लेकिन उनके इन रिपोर्ताजों में उनकी राजनीतिक सोच और समझ जितने स्पष्ट रूप में सामने आती है उतनी कदाचित् उनकी किसी और रचना में नहीं आती। वह सब कहीं सत्ता-पक्ष की क्षुद्रताओं, नैतिक स्खलन, कुसी-मोह, अक्षम प्रशासन और जनता के उत्पीड़न एवं हताशा में उसकी बढ़ती हुई भूमिका को व्यंग्य और आवेश के साथ रेखांकित करते हैं।''[71] इस प्रकार इन रिपोर्ताजों में रेणु ने स्वतंत्रता के बाद की भारतीय राजनीति और राजनेताओं की अनैतिकता और भ्रष्टाचार का कच्चा-चिट्ठा खोल डाला है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि रेणु के रिपोर्ताज अप्रतिम हैं। उनके रिपोर्ताजों में अनुभव ही खबर बन आ जाती है। अपने अनुभवों को वे वृहत्तर देशकाल में रखकर प्रस्तुत करते हैं। इसके पीछे उनके मन में भीतर बैठा वह सहृदय मानव है जो उन्हें वृहत्तर जीवन-संदर्भों से संपृक्त कर देता है। उनके रिपोर्ताजों को पढ़कर यह अनुभव बार-बार होता है कि वे आज बन रहे इतिहास के आलेखकार हैं। रेणु के रिपोर्ताज सम्मोहित करते हैं। आशा, निराशा, निर्विकार भाव मन को गहरे तक छूते हैं।

**निष्कर्ष**

कहा जा सकता है कि फणीश्वरनाथ रेणु की विचारधारा उनके जीवन-संघर्षों, राजनीतिक अनुभवों और सामाजिक प्रतिबद्धताओं का समन्वित रूप है। उनकी वैचारिक चेतना का विकास स्वतंत्रता आंदोलन, समाजवादी विचारधारा तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के संपर्क में हुआ। उन्होंने राजनीति को जनजीवन से जोड़कर देखा और सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा को अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति का आधार बनाया। रेणु के लिए साहित्य केवल मनोरंजन अथवा कलात्मक सौंदर्य की वस्तु नहीं था, बल्कि वह समाज की वास्तविकताओं को समझने और जनसाधारण की पीड़ा को अभिव्यक्त करने का माध्यम भी था।

उनके कथा साहित्य में ग्रामीण समाज की आर्थिक विषमता, जातिगत भेदभाव, राजनीतिक अवसरवाद, शोषण और सामाजिक रूढ़ियों का चित्रण उनकी आलोचनात्मक दृष्टि को स्पष्ट करता है। 'मैला आँचल' जैसी कृतियाँ स्वतंत्रता के बाद भारतीय ग्रामीण समाज में उत्पन्न आशाओं, अंतर्विरोधों और विडंबनाओं को उजागर करती हैं। रेणु की जनपक्षधरता उन्हें सामान्य मनुष्य के सुख-दुःख, संघर्ष और आकांक्षाओं के निकट ले जाती है। उनकी विचारधारा को किसी एक राजनीतिक विचारधारा की सीमाओं में बाँधकर नहीं समझा जा सकता, क्योंकि उसमें मानवीय संवेदना और सामाजिक न्याय की व्यापक आकांक्षा विद्यमान है। इस प्रकार रेणु का साहित्य राजनीतिक चेतना और आंचलिक यथार्थ का सशक्त समन्वय प्रस्तुत करता है। उनकी रचनाएँ आज भी सामाजिक असमानता, लोकतांत्रिक मूल्यों और मानवीय गरिमा के प्रश्नों पर विचार करने की प्रेरणा देती हैं।

**संदर्भ:-**

1. रेणु रचनावली, भाग-2, पृ. 22
2. आलोचना, अपौल, 1966, पृ. 84
3. डाॅ. पूर्णदेव 'रेणु का आंचलिक कथा साहित्य' आशा प्रकाशन गृह दिल्ली, प्रथम संस्करण 1990
4.स. भारत यायावर, रेणु रचनावली, भाग-2, पृ. 307, 308
5. वहीं, 'परती परिकथा' पृ. 311
6. वहीं, पृ. 319
7. वहीं 'परती परिकथा' पृ. 326
8. वहीं, 'परती परिकथा'पृ. 326
9. वहीं 'परती परिकथा'पृ. 427
10. वहीं, रेणु रचनावली भाग-3 भूमिका से
11. वहीं, रेणु रचनावली भाग-3 भूमिका से
12. स. भारत यायावर, रेणु रचनावली, भाग-3, दीर्घतपा, पृ. 353
13. स. भारत यायावर, रेणु रचनावली, भाग-3, दीर्घतपा, पृ. 352
14 वही, पृ. 377
15. फणीश्वरनाथ रेणु, दीर्घतपा, भूमिका से।
16. स.भारत यायावर, रेणु रचनावली, भाग-3, भूमिका से, पृ. 12
17. स. भारत यायावर, रेणु रचनावली, भाग-3, जुलुस, पृ. 230
18. स. भारत यायावर, रेणु रचनावली, भाग-3, जुलुस, भुमिका से पृ. 13
19. फणीश्वरनाथ रेणु, जुलुस, पृ. 31
20. फणीश्वरनाथ रेणु, कितने चैराहे, पृ. 99
21 वहीं, पृ. 140
22. वहीं, पृ. 140
23. वहीं, पृ. 122
24. फणीश्वरनाथ रेणु, पल्टू बाबु रोड, पृ. 19
25. वहीं, पृ. 69
26. फणीश्वरनाथ रेणु, पल्टू बाबु रोड, पृ. 33
27. उदृत, डां अशोक कुमार आलोक ;संपाद्ध फणीश्वरनाथ रेणु-सृजन और संदर्भ पृ. 167
28. तीसरी कसम, रणु रचनावली, भाग-1, संपा.भारत यायावर, पृ.-141
29. वहीं, पृ. 169
30. रामदरश मिश्र, हिंदी कहानी: अंतरंग पहचान, पृ. 120, नेशनल पब्लिक हाउस, नई दिल्ली 1977

31. फणीश्वरनाथ रेणु, रेणु रचनावली-1, संप0 भारत यायावर, पृ. 132
32. रामवचन राय, रेणु:संस्मरण और श्रद्धाजलि, पृ. 47;संप. रामबुझावन सिंहद्धनवनीता प्रकाशन, पटना, संस्करण 1982
33. सं. भारत यायावर, रेणु रचनावली-1, संवदिया, पृ. 326
34. सं. भारत यायावर, रेणु रचनावली-1, संवदिया, पृ 328
35. वहीं, पृ. 329
36. वहीं, पृ. 333
37. सं. भारत यायावर, रेणु रचनावली-1, ठेस, पृ. 178
38. वहीं, पृ. 179
39. वहीं, पृ. 179
40. वहीं, कहानी-आत्मसाक्षी, पृ. 402
41. सं. भारत यायावर, रेणु रचनावली-1, भूमिका से, पृ. 17
42. वहीं, आत्मसाक्षी, पृ. 402
43. वहीं, पृ. 409
44. 'जलवा', रेणु रचनावली-1, संपा.भारत यायावर, पृ0 467
45. विघटन के क्षण, पृ. 450, 451,
46. वहीं, पृ. 453
47. सं. भारत यायावर, रेणु रचनावली-1, 'उच्चाटन'पृ. 389
48. वहीं, तीर्थोदक, पृ. 213
49. वहीं, तीर्थोदक, पृ. 214
50. वहीं, पृ. 218
51. वहीं आजाद परिदे, पृ. 412
52. वहीं आजाद परिदे, पृ. 411
53. वही, ं आजाद परिदे, पृ. 417
54. सं. भारत यायावर, रेणु रचनावली-1, पंचलाइट, पृ. 193
55. सं. भारत यायावर, रेणु रचनावली-1, पंचलाइट, पृ. 193
56. वहीं, पृ. 196
57. वहीं, पृ. 196
58. वहीं, 'नौना जोगिन', पृ. 425
59. वहीं, 'नौना जोगिन', पृ. 429
60. वहीं, 'नौना जोगिन', पृ. 429 1
61. वहीं, 'नौना जोगिन', पृ. 429
62. वहीं, 'नौना जोगिन', पृ. 430

63. फणीश्वरनाथ रेणुःसृजन और संदर्भ, ;;संपा.द्धडाॅ. अशोक कुमार आलोक, पृ. 196, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा, प्रथम संस्करण 1994
64. 'वन तुलसी की गंध', पृ. 32, रेणु रचनावली-5, संपा.-भारत यायावर
65. वहीं, स्केच-अज्ञेय, पृ. 40
66. वहीं, स्केच-उग्र, पृ. 56
67. वहीं, स्केच-गप्प का शीर्षक, पृ. 193
68. वहीं, आत्मसंस्मरण-'एक बुलंद खुदी, उर्फ मसहूर नकबेसर का किस्सा', पृ. 168, रेणु रचनावली-5
69. वहीं 120. 'मेरा हमदम मेरा दोस्त', रेणु की श्रेश्ट कहानियां, संपा.-कमलेश्वर, भूमिका से
121. रेखाचित्र संकलन 'वन तुलसी का गंद' संपा. भारत यायावर, पृ. 60, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्मरण, दिल्ली
122. फणीश्वरनाथ रेणु सृजन और संदर्भ, ;संपा.द्ध डाॅ. अशोक कुमार आलोक, पृ. 196, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा, प्रथम संस्करण 1994